शिवाजी

[ऐतिहासिक नाटक]

लेखक

डा० रामकुमार वर्मा

एम्० ए०, पी-एच० डी०
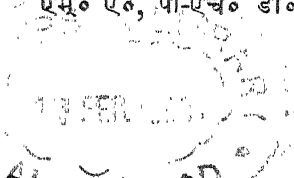
भारतीय इतिहास का यह आलोकमय पृष्ठ चरित्र-निर्माण
के द्वारा सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति स्वस्थ,
आशामय, क्रियाशील और
स्वावलम्बी मनोवृत्ति उत्पन्न
करने में सहायक
होगा।

साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

समर्पण

छत्रपति शिवाजी की

आराध्या

शिवा-भवानी

के

श्री चरणों में

भूमिका

'शिवाजी' नाटक की रचना विद्यार्थियों के भाव-क्षेत्र को अधिक विस्तृत और परिष्कृत करने के दृष्टिकोण से ही की गई है। इस नाटक का कथानक भारतीय इतिहास का एक अत्यंत आलोकमय पृष्ठ है। छत्रपति शिवाजी ने अपने चरित्र-निर्माण के साथ ही साथ भारतीय आदर्शों के अनुकूल जिस संघ-शक्ति का निर्माण किया था वह उन्हें महापुरुष की संज्ञा से विभूषित करती है। ऐसे ही महापुरुषों का चरित्र हमारे अध्ययन और मनन की सामग्री होनी चाहिए और इन्हीं से हमारे विद्यार्थियों के हृदय का विकास होना चाहिए। आज हमारे साहित्य का सबसे प्रमुख दृष्टिकोण यह हो कि वह हमारे विद्यार्थियों के हृदय में अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आदर्शों के प्रति गौरव और अभिमान का भाव जाग्रत करे। इस नाटक में सर्वप्रथम प्रयत्न इसी बात का किया गया है कि छत्रपति शिवाजी के चरित्र को सामने रखकर, विद्यार्थी-वर्ग अपना चरित्र-निर्माण करे। उसका दृष्टिकोण पूर्ण नैतिक और स्वस्थ हो। शिवाजी के मनोभावों को देखकर विद्यार्थी के हृदय में सहानुभूति, स्वावलंबन, उत्साह और क्रियाशीलता का आविर्भाव हो। विषम परिस्थितियों में भी उसके हृदय में आशा-वाद का ऐसा अंकुर निकले जो आगे चलकर आत्मविश्वास और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की क्षमता में पल्लवित और पुष्पित हो। समाज की समृद्धि के चरित्र-गठन की आवश्यकता सर्वप्रथम है। इस नाटक के कथानक में शिवाजी ने अपने चरित्र की दृढ़ता में समस्त प्रलोभनों पर विजय प्राप्त की है। कल्याण की लूट में प्राप्त हुई अप्रतिम सुन्दरी गौहरबानू के आकर्षण की हिलोर को दृढ़व्रती शिवाजी

लेखक का दृष्टिकोण

ने केवल 'माँ' शब्द की दृढ़ कगार से लौटा दिया। जहाँ अनेक राजाओं ने अपने अन्तःपुर को सुन्दरियों की संग्रह-शाला बनाने में अपने बल और पराक्रम को आँका है। वहाँ महाराज शिवाजी ने शत्रु की अत्यंत सुन्दरी स्त्री में भी अपनी माता जीजाबाई के दर्शन किए। यह चरित्र-दृढ़ता केवल मात्र भारतीय है और इन्हीं नैतिक आदर्शों पर चलकर हमारे विद्यार्थियों को उस राष्ट्र का निर्माण करना है जिसमें जीवन प्रतिफल चरित्र-दृढ़ता से संचालित होकर कौशल से कर्म करने में प्रतिफलित होता है। इसके साथ ही हृदय में ऐसी सुरुचि उत्पन्न होती है जिससे 'गुन दोष मय' विश्व से हमारा हृदय हंस के समान वारि-विकार का परित्याग कर गुण रूपी 'पय' को ही ग्रहण करता है। 'शिवाजी' नाटक के कथानक में उपर्युक्त आदर्श का स्पष्टीकरण है, इसलिए यह कथानक विद्यार्थियों के जीवन की निजी संपत्ति होनी चाहिए।

संस्कृत के आचार्यों ने काव्य के दो भेद माने हैं—दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य जहाँ पाठकों के हृदय में रस-संचार करता है और कल्पना में काव्यजनित आनन्द उत्पन्न करता है, वहाँ दृश्य-काव्य रंगमंच की सहायता से उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव पात्रों अथवा अवस्था की अनुकृति से होता है। इसी अनुकृति में 'दृष्टि-रोचन' के लिए पात्रों का रूप रक्खा जाता है और इसीलिए दृश्य-काव्य की रूपक संज्ञा है। दृश्य काव्य दो भागों में विभाजित हुआ है, रूपक और उपरूपक। जिनमें रस प्रधान और अनुकृति गौण है, वे रूपक हैं और जिनमें अनुकृति प्रधान है और रस गौण है, वे उपरूपक हैं। इनकी संख्या क्रमशः १० और १८ मानी गई है। रूपकों में नाटक ही मुख्य समझा गया है इसलिए आगे चलकर सभी रूपक-भेद नाटक के नाम से कहे गये। भरतमुनि इस नाट्य-

दृश्य काव्य

शास्त्र के आदि आचार्य हैं, इसीलिए रूपकों के अंत में जो आशीर्वचन रक्खे गए, उनका नाम आचार्य भरत की स्मृति के हेतु 'भरत वाक्य' रक्खा गया। किन्तु आधुनिक नाटकों में न तो प्रारम्भ में और न अंत में किसी भी स्तुति या वंदना की आवश्यकता समझी गई है। संभवतः आज-कल देवताओं और उनकी शक्तियों में हमारा विश्वास कम हो चला है।

आधुनिक नाटक

प्राचीन नाटक आदर्शवादी थे। इसीलिए वे सुखांत भी। उन नाटकों में नायक धर्म और नीति का प्रतीक होता था, अतः आचार्यों और समाज को उसका पराभव किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं था। वह धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर-प्रशांत और धीरललित प्रकार का होता था। यदि नायक पराजित होता तो धर्म और नीति के अनुसरण करने की व्यर्थता समाज के सामने स्पष्ट होती और उसका परिणाम समाज में अधर्म और अनाचार फैलाना ही होता। अतः स्वाभाविकता की अधिक चिन्ता न करते हुए हमारे प्राचीन आचार्यों ने समाज में धर्म और न्याय के प्रचारार्थ नायक की विजय सर्वत्र दिखलाई और नायक की विजय में नाटक सदैव सुखान्त होता है किंतु आधुनिक काल में आदर्शवाद के नाम पर यथार्थवाद और स्वाभाविकता की हत्या नाटक-लेखकों और समालोचकों को किसी प्रकार भी मान्य नहीं हुई। जीवन की स्वाभाविकता और 'रस' की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक संघर्ष ही आधु-निक नाटककारों को स्वीकार हुआ। जीवन की स्वाभाविकता लाने के लिए मृत्यु और पराभव के दृश्य दिखलाने की आवश्यकता भी पड़ी जो दृश्य संस्कृत नाटक में वर्जित समझे गए थे। इस प्रकार आधुनिक नाटक प्राचीन नाटकों से बिलकुल ही भिन्न शैली पर लिखे जाने लगे। आधुनिक नाटककारों ने जीवन की स्वाभाविकता के चित्रण के साथ ही साथ रंगमंच की कला में भी विकास किया। उन्होंने अपने कथानक की रचना में ऐसे दृश्यों की अधिक अवतारणा की जो रंगमंच पर

स्वाभाविकता के साथ प्रदर्शित किये जा सकते हैं। संक्षेप में प्राचीन और आधुनिक नाटक में निम्नलिखित अंतर है :—

प्राचीन नाटक	आधुनिक नाटक
१ नायक विशिष्ट गुणों से संपन्न हो (वह उदात्त, उद्धत, प्रशांत या ललित प्रकार का हो।)	१ नायक में किन्हीं विशिष्ट गुणों की आवश्यकता नहीं है। वह किसी भी परिस्थिति का मनुष्य मात्र हो।
२ रस की प्रधानता होनी चाहिए।	२ रस की अपेक्षा मनोविज्ञान की प्रधानता आवश्यक है।
३ कथा में संघर्ष केवल मध्य तक ही हो, उसके बाद नायक की विजय स्पष्ट दीखना चाहिए (इसमें 'क्लाइमैक्स' के लिए स्थान नहीं है।)	३ कथा में संघर्ष अंत तक होना चाहिए। अंत में चरम सीमा (जिसे अंगरेजी में क्लाइमैक्स Climax कहते हैं) व्यवस्थित रूप से रहे।
४ चरित्र की अपेक्षा सत्य और न्याय-सिद्धान्त की प्रधानता अपेक्षित है।	४ चरित्र (Character) का विश्लेषण ही प्रमुख है।
५ आदर्शवाद ही अंत का निष्कर्ष है।	५ यथार्थवाद ही अन्त का निष्कर्ष है।
६ नाटक में मृत्यु आदि दुःखद घटनाएँ वर्जित हैं।	६ इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।
७ नाटक केवल मात्र सुखान्त होना चाहिए।	७ नाटक जीवन की परिस्थितियों के अनुसार सुखान्त और दुःखान्त दोनों ही हो सकते हैं।
८ रंगमंच की व्यवस्था संकेतात्मक है।	८ रंगमंच की व्यवस्था वैज्ञानिक और कलात्मक है।

इस प्रकार आधुनिक नाटक जीवन की स्वाभाविकता और यथार्थता से अधिक निकट आ पहुँचा है। उसमें पात्र-संघर्ष और अंतर्द्वन्द्व अधिक हो गया है और जीवन की समस्याएँ रंगमंच पर आकर अपना-अपना हल खोजने लगी हैं। कल्पना और भावुकतामय आदर्श के लिए आधुनिक रंगमंच पर कोई स्थान नहीं रह गया है। जीवन के संघर्ष की सारी कहानी आधुनिक रंगमंच पर आ गई है। इसके कथा-विस्तार में कोई अस्वाभाविक और अयुक्तिपूर्ण प्रसंग नहीं रह गया है। पात्रों के मनोविज्ञान के आरोहावरोह में संघर्ष की अत्यन्त शक्तिशाली प्रेरणा समा गई है। समस्त नाटक के सुखान्त या दुःखान्त का भार आकर एक वाक्य में संतुलित हो गया है। वहीं चरम विन्दु की कुतूहलता है। ऐसे नाटक में संगीत की अपेक्षा संवाद की उपयोगिता अधिक मानी गई है। संगीत की आवश्यकता अब केवल वातावरण के निर्माण में है अथवा किसी संगीत-प्रेमी के चरित्र-चित्रण में, अन्यथा संगीत नाटक से निर्वासित-सा हो चला है। अब 'कला' जीवन को स्पष्ट करने की एक आलवन शक्ति है जिसमें स्वाभाविकता का ही एक-छत्र राज्य है। नाटक में सिद्धान्त प्रतिपादन वहीं आता है जहाँ हमें उसकी आवश्यकता होती है अन्यथा चरित्र-चित्रण में सिद्धान्त आप से आप निकल आया है जैसे सूर्योदय के साथ प्रकाश।

एकांकी नाटक

जब समस्त जीवन अथवा जीवन के विस्तृत भाग की अपेक्षा उसके केवल एक भाग या एक भावना के चित्रण की आवश्यकता पड़ती है तो एकांकी नाटक की रचना की जाती है। एकांकी नाटक में केवल एक ही अंग होता है। नाटककार अपनी सुविधानुसार या कथा के अन्य अंगों को स्पष्ट करने के विचार से उस अङ्क के अन्तर्गत अन्य दृश्यों की अवतारणा भी कर लेता है किन्तु अनेक नाटककार केवल एक अङ्क में एक दृश्य ही रखने से पक्ष में हैं। प्राचीन रूपकों में भी केवल एक अङ्क के

रूपक होते थे। रूपकों में भाण, अंक और वीथी तथा उपरूपकों में गोष्ठी और नाट्य रासक एक ही अंक में लिखे जाते थे किन्तु ये सब रूपक और उपरूपक जो एक ही अंक में समाप्त होते थे, प्राचीन संस्कृत नाट्यशास्त्र से ही शासित थे। आज का एकांकी नाटक पश्चिम की देन है। इसमें कार्य-व्यापार की जटिलता में से किसी जीवनगत सत्य को निकाल लेना या किसी समस्या को सुलझा लेना ही मुख्य दृष्टिकोण रहता है। "एकांकी नाटकों में अन्य प्रकार के नाटकों से विशेषता रहती है। उसमें एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा (Climax) तक पहुँचती है उसमें अप्रधान प्रसङ्ग नहीं रहता। एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द प्राण की तरह आवश्यक रहते हैं! पात्र-चार या पाँच ही होते हैं, जिनका सम्बन्ध नाटक की घटना से सम्पूर्णतया संबद्ध रहता है। वहाँ केवल मनोरञ्जन के लिए अनावश्यक पात्र की गुँजाइश नहीं। प्रत्येक पात्र की रूपरेखा पत्थर पर खींची हुई रेखा की भाँति स्पष्ट और गहरी होती है। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृङ्खलता नहीं। घटना के प्रत्येक भाग का सम्बन्ध मनुष्य-शरीर के पैरों के समान है जिसमें अनुपात विशेष से रचना होकर सौन्दर्य की सृष्टि होती है। कथावस्तु भी स्पष्ट और कौतूहल से युक्त रहती है और उसमें वर्णनात्मक की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्व की प्रधानता रहती है। जिस प्रकार कहानी उपन्यास से भिन्न है, उसी प्रकार एकांकी नाटक साधारण नाटक से (मेरे 'पृथ्वीराज की आँखें' नाटक संग्रह की भूमिका से) संक्षेप में यह अन्तर निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है

साधारण नाटक	एकांकी नाटक
१ जीवन की विविध रूपता	१ जीवन की एकरूपता

साधारण नाटक	एकांकी नाटक
२ अनेक पात्र	२ परिमित पात्र
३ कथा का सांगोपांग विस्तार	३ कथा में अनावश्यक अंग की उपेक्षा। केवल [illegible] के अनुसार कथा की आवश्यक सृष्टि
४ अनेक अंक	४ केवल एक अंक
५ चरित्र-चित्रण में विविधता	५ चरित्र-चित्रण की तीव्र और संक्षिप्त रूप-रेखा
६ कौतूहल की अनिश्चित स्थिति	६ प्रारंभ में ही कौतूहल की स्थिति
७ वर्णनात्मकता की अधिकता	७ व्यञ्जनात्मकता की अधिकता और प्रभावशीलता
८ चरम सीमा का विस्तार	८ चरम सीमा का बिन्दु में केन्द्रीकरण
९ कथानक की घटना-विस्तार से मन्दगति	९ कथानक की घटना-न्यूनता से क्षिप्र गति

[अब हम प्रस्तुत नाटक शिवाजी पर विचार करेंगे]

कथानक

'शिवाजी' नाटक का कथानक २४ अक्टूबर सन् १६५७ ई० की वह घटना है जो शिवाजी के चरित्र-बल के दृष्टिकोण से दक्षिण भारत के इतिहास में अद्वितीय है। सर जदुनाथ सरकार उस घटना का विवरण इस प्रकार देते हैं :—

'सन् १६५८ और १६५९ ई० के दो वर्ष में मुगल शहजादे दिल्ली के सिंहासन के लिए आप ही युद्ध में फँसे रहे, इसलिए शिवाजी को इस ओर से कुछ भी डर न रहा। इधर पिछले युद्ध में किसके दोष से बीजापुर वाले मुगलों से हारे, इस बात को लेकर बीजापुर के मंत्री और फौजी अफसरों में भारी हुज्जत होने लगी। प्रधान मंत्री खान मुहम्मद का राजधानी में खून हो गया।

इस गड़बड़ी से लाभ उठाकर शिवाजी अपना राज्य मनमाना बढ़ाने लगे। पश्चिमी घाट (सह्याद्रि पर्वत श्रेणी) पार कर वे उत्तर कोंकण,—वर्तमान थाना जिले में जा घुसे और बीजापुर के हाथ से कल्याण और भिवंडी नामक दो शहर छीन लिये। वहाँ उन्हें बहुत माल हाथ लगा। (२४ अक्टूबर सन् १६५७)। बीजापुर के अधीन मुल्ला अहमद नामक एक अरब जाति का रईस इस कल्याण प्रदेश पर शासन करता था। शिवाजी के सेनापति आबाजी सोनदेव ने इस प्रदेश पर अधिकार करते समय मुल्ला अहमद की खूबसूरत नौजवान पुत्रवधू को कैद कर लिया, और भेंट-स्वरूप शिवाजी के पास भेज दिया, परन्तु शिवाजी ने बन्दिनी की ओर केवल एक ही बार देखकर कहा—'आह! यदि मेरी माँ भी इसी के समान होती, तो कैसे आनन्द की बात होती! मेरा भी चेहरा कैसा सुन्दर होता!' इस प्रकार शिवाजी ने उस युवती को 'माँ' कहकर संबोधन किया और उसे कपड़ों तथा गहनों सहित उसके ससुर के पास इज्जत के साथ बीजापुर भेज दिया। उस युग में यह एक नई बात हुई जिसे सुनकर सब लोग अचंभित हो गये।" (शिवाजी, सर जदुनाथ सरकार, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, पृष्ठ ३९-४०)।

इसी कथानक को नाटकीय स्थितियों से समन्वित कर शिवाजी नाटक की रचना हुई है। बीजापुर के आक्रमण का सजीव चित्रण करने के लिए गंगा और सोना का वार्त्तालाप प्रारंभ में रक्खा गया है। मुल्ला अहमद की पुत्रवधू के विवरण के लिए सेनापति आबाजी सोनदेव की बहिन के संवादों की व्यवस्था की गई है। शिवाजी और उसके सेनापतियों से वार्त्तालाप में तत्कालीन इतिहास की रूपरेखा स्पष्ट की गई है। इस प्रकार पात्रों के कथोपकथन में समस्त राजनीतिक, सामाजिक और जातिगत समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है और ऐतिहासिक सत्य के रूप को निखारने की चेष्टा की गई है।

प्रारंभ में माला गूँथने का प्रसंग, कटार छीन लेने का प्रसंग और अंत में आरती का प्रसंग केवल कथानक में स्वाभाविकता और सजीवता लाने के लिए ही नियोजित है। किन्तु समस्त नाटक में एक भी बात ऐसी नहीं आने पाई है जो ऐतिहासिक सत्य से परे हो अथवा जो तत्कालीन राजनीति और संस्कृति में घटित न हो सकती हो।

चरित्र-चित्रण

इस नाटक में शिवाजी के चरित्र-चित्रण का प्रमुख दृष्टिकोण है। जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व ही दिशाओं में हलका प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार शिवाजी के चरित्र के आलोक के पूर्व उनके चारों ओर के पात्रों में चरित्र की दृढ़ता और उज्ज्वलता दिखलाई पड़ने लगती है। शिवाजी का प्रवेश नाटक के मध्य में होता है। उनके आने के पूर्व उनके उदार और क्रियाशील चरित्र की भूमिका निर्मित होती रहती है और दर्शकों का मन शिवाजी के दर्शन करने के लिए उतावला होने लगता है। जिस प्रकार मेघ-पटल में से सूर्य निकलता है और एक क्षण में चारों ओर उज्ज्वल विभूति सी छा जाती है, उसी प्रकार परिस्थितियों के मण्डल से शिवाजी निकलते हैं और अपनी भव्यमूर्ति से रंगमंच पर अपूर्व उत्साह की सृष्टि करते हैं। उनके चरित्र में आदर्श के प्रति गौरव और अभिमान है। वे अपनी संस्कृति के प्रतीक हैं और उनमें सहानुभूति, स्वावलंबन, उत्साह और क्रियाशीलता की तेजस्विनी शक्ति है। जैसी चरित्र-दृढ़ता की ज्योति शिवाजी में है, वैसी ही गौहरबानू और सोना में भी है। इन तीनों का एक स्थल पर समन्वय हमारे देश की भावनाओं का एक उज्ज्वल ज्योति-स्तंभ है जो हमारे युवक और युवतियों की जीवन-नौका के कठिन मार्ग को आलोकित करने की क्षमता रखता है।

इस नाटक के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हैं। काशीबाई, सोना, गंगा और अंजुमन काल्पनिक हैं किंतु इन काल्पनिक पात्रों की सृष्टि

ऐतिहासिक विचार-धारा के क्रोड़ में है। इनका मनोवैज्ञानिक निर्माण तत्कालीन जातीयता और राजनीति में पोषित हुआ है। ऐतिहासिक पात्रों में—

शिवाजी—संगठनकर्त्ता, प्रत्युत्पन्न मति उदार, क्रियाशील, कर्मयोगी, राजनीतिज्ञ, उत्साही, मातृभक्त, देश-प्रेमी, भवानी-भक्त, साम्यवादी, नारी-जाति की मर्यादा सुरक्षित रखनेवाले और प्रसन्नचित हैं।

आबाजी सोनदेव—उत्साही, पराक्रमी और कूटनीतिज्ञ हैं किन्तु इसके साथ ही उनकी स्वामिभक्ति दृढ़ है।

मोरोपन्त—उदार, गंभीर और स्वामिभक्त हैं।

शम्भूजी कावजी
रघुनाथ बल्लाल } स्वामिभक्त और पराक्रमी हैं।
मीनाजी

गौहरबानू—सुन्दरता के अभिशाप को समझने वाली, ममता से परिपूर्ण, वीर-पूजा से ओत-प्रोत और साथ ही चरित्रनिष्ठ है।

काशीबाई में सौन्दर्य और यौवन की मादकता है किन्तु वह देश-प्रेम में अपनी आस्था रखते हुए भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व से ओत-प्रोत है। वह महाराष्ट्र में नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है। अविवाहित होने के कारण उसमें वाचलता और चंचलता यथेष्ट मात्रा में है। वह महाराष्ट्र नारी की प्रधान प्रवृत्ति—सहानुभूति से परिपूर्ण है। सोना में भाई की ममता प्रधान है किन्तु इतने पर भी वह देश-प्रेम को नहीं भूलती। गंगा और अंजुमन परिचारिकाओं के उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह करने वाली हैं।

इस प्रकार इस एकांकी में प्रत्येक चरित्र की रूपरेखा को अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। ये चरित्र पत्थर पर खींची गई रेखा के समान स्थायी और अमिट होंगे, यह मेरा विश्वास है।

नाटक में चरित्रों का सौन्दर्य अन्तर्द्वन्द्व से ही निखरता है। वही प्रधान साधन है जिसके द्वारा पात्रों के चरित्र की सूक्ष्मता स्पष्ट होती है। शिवाजी के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व एक क्षण में स्पष्ट हो जाता है जब कि गौहरबानू के सौन्दर्य को देखकर एक क्षण के लिए "यह दैवी वरदान !" कहकर स्तंभित हो जाते हैं किन्तु दूसरे ही क्षण वे अपनी चरित्र-दृढ़ता से गौहरबानू का परितोष करने के लिए एकांत चाहते हैं। और यहीं कौतूहल की सृष्टि होती है। दर्शक या पाठक समझते हैं कि शायद शिवाजी गौहरबानू को पत्नीरूप में स्वीकार कर लें किन्तु इस भावान्दोलन के बाद जब शिवाजी "मेरे सामने जीजाबाई और गौहरबानू में कोई फर्क नहीं है" कहकर अपने दृढ़ चरित्र का परिचय देते हैं तो हमारे सामने एक नाटकीय स्थिति आती है जिसमें हृदय शान्त और पवित्र हो जाता है और नायक के प्रति हृदय में श्रद्धा का उदय होता है।

अन्तर्द्वन्द्व

सोना का अन्तर्द्वन्द्व यवनिका उठते ही सामने आता है जब वह अपने भाई यादव के न लौटने से दुखी है। यह ममता और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व बराबर चलता जाता है। जब शिवाजी उसकी ममता का प्रतिपादन करते हैं तो दर्शक के हृदय में शान्ति का आविर्भाव होता है।

गौहरबानू के हृदय में भी अन्तर्द्वन्द्व है। वह नहीं जानती कि शिवाजी उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे। वह काशी के सामने कहती है कि "अगर श्रीमंत शिवाजी ने मेरे साथ अच्छा बरताव नहीं किया तो उनके साथ लड़ूंगी" आदि। इस अन्तर्द्वन्द्व की समाप्ति शिवाजी के द्वारा 'माँ' कहने के भाव में है। इस प्रकार इन तीन पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व में ही नाटक के मनोविज्ञान का विकास हुआ है।

नाटक में कौतूहल की आश्चर्यजनक स्थिति रहनी आवश्यक है।

कथा-साहित्य में कौतूहल प्राण की तरह आवश्यक है। साधारण निबन्ध या काव्य में तथा या कथा में यही

कौतूहल

अन्तर है कि प्रथम में कारण और कार्य की शृङ्खला से मनोभावों का क्रमिक विकास होता है और दूसरे में कारण के पूर्व ही कार्य की स्थिति रखकर आश्चर्यपूर्ण घटनाओं से दोनों का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, इसी में कौतूहल का जन्म होता है। नाटक की कथा के विकास में यह कौतूहल विशेष मात्रा में अपेक्षित है, एकांकी नाटक में तो इसकी उपयोगिता और भी अधिक है क्योंकि कथा के विकास की सीमाएँ परिमित हैं और संकुचित क्षेत्र में ही घटनाओं का आरोहावरोह करना पड़ता है। इस नाटक के प्रारम्भ में ही सोना का मनोविज्ञान कौतूहल की सृष्टि करता है। आगे चलकर यह कौतूहल शक्ति संचय करता है। संक्षेप में इस नाटक में निम्न-लिखित कौतूहल-जनक परिस्थितियाँ हैं :—

१. सोना का मनोविज्ञान
२. काशी की गौहरबानू के संबन्ध में जिज्ञासा
३. आबाजी सोनदेव की कूटनीति
४. गौहरबानू का हरण
५. काशी और गौहरबानू में संघर्ष और बाह्य कौतूहल (कटारों का छीना जाना।)
६. यादव रामचन्द्र की मृत्यु का उद्‌घाटन
७. शिवाजी की एकांत-व्यवस्था
८. शिवाजी द्वारा गौहरबानू को 'माँ' का संबोधन
९. प्रारम्भ में गूँथी जाने वाली माला की शिवाजी के कंठ-हार से पूर्ति

इस प्रकार इस कथावस्तु में ९ कौतूहल-जनक परिस्थितियाँ हैं जिनसे घटनाओं के विकास में आकर्षण और उत्साह उत्पन्न किया गया है। कथा में जितनी ही अधिक कुतूहलता होगी, वह उतनी ही

अधिक नाटक की सफलता का संकेत करेगी।

संवाद और भाषा

संवादों की उपयोगिता पात्रों के मनोविज्ञान और व्यक्तित्व के चित्रित करने में है। इसीलिए पात्रों के अनुकूल संवाद होना आवश्यक है। यह संवाद कथावस्तु का विशिष्ट भाग हो, केवल मात्र मनोरंजन के लिए संवाद का विस्तार नहीं होना चाहिये। वह पूर्ण स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल हो। इस नाटक में जहाँ मुसलमान पात्र आए हैं अथवा उनसे बातचीत हुई है, वहाँ पात्रों और परिस्थितियों की स्वाभाविकता के लिए संवादों में विदेशी शब्दों का मिश्रण है अन्यथा सारे नाटक में भारतीय परंपरा की व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया गया है। पात्रों के मनोभावों के अनुसार भी संवाद संक्षिप्त और विस्तृत हैं और उनकी भाषा में भी परिवर्तन किया गया है। यह बात कहानी और उपन्यास के लिए उतनी सत्य नहीं है जितनी नाटकों के लिए है क्योंकि नाटक दृश्य काव्य के रूप में है। रंगमंच पर अधिक से अधिक स्वाभाविकता उपस्थित करने की आवश्यकता में पात्रों के मनोविज्ञान और उनके मुख की भाषा को यथावत् ही रहना चाहिए। शिवाजी के संवादों में ओजस्विता, दृढ़ता और शक्ति है। वे विशुद्ध भाषा में अपना मनोविज्ञान स्पष्ट करते हैं किन्तु जब गौहरबानू से बातचीत करते हैं तो अपने मनोभावों को समझाने के लिए वे गौहरबानू की भाषा के समीप पहुँचते हैं। गौहरबानू की भाषा मिश्रित है और उसमें विदेशी शब्दों की उचित मात्रा है जिससे उसके चरित्र की स्वाभाविकता अधिक स्पष्ट हो सके। काशीबाई सुन्दरी और युवती है, उसमें प्रेम की मादकता है, इसलिए उसके संवादों में काव्य की छटा इधर-उधर दिखलाई देती है। शेष पात्र विशुद्ध भाषा का आश्रय लेकर अपने जातीय मनोभावों को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार नाटक में परिस्थिति और पात्रों के मनोविज्ञान के अनुकूल भाषा रखने का

प्रयत्न किया गया है।

इस नाटक के द्वारा हम अपने प्राचीन गौरव को एक बार फिर आँखों के सामने लाना चाहते हैं। महाराज शिवाजी के चरित्र में हमें अपने आदर्शों को समझने की क्षमता प्राप्त होती है। उनका चरित्र हमारे अनुकरण की वस्तु है। जिन विषम परिस्थितियों से उठकर वीर शिवाजी ने अपने बाहुबल से एक स्वतंत्र राष्ट्र का निर्माण किया था, वैसी ही विषम परिस्थितियाँ जीवन में किसी न किसी रूप में हमारे नवयुवकों के सामने हैं। उन्हें शिवाजी के चरित्र से शक्ति और दृढ़ता प्राप्त होगी। सर जदुनाथ सरकार के शब्दों में यह भाव अत्यन्त स्पष्ट रूप से अंकित है। "शिवाजी के चरित्र के ऊपर विचार करने से हमें यह शिक्षा मिलती है कि प्रयाग के अक्षयवट की तरह हिन्दू जाति का प्राण अमर है। सैकड़ों वर्ष तक बाधाओं और विपत्तियों को झेलकर भी पुनः सिर ऊँचा करने की और नये शाखा-पल्लव फैलाने की ताकत उसमें छिपी है। धर्मराज्य स्थापना करने से, चरित्र को दृढ़ रखने से, नीति और नियम के ऊपर चलने की विधि को अन्तरात्मा से मान लेने से, जन्म-भूमि को अपने स्वार्थ से बढ़कर समझने से, बातूनी होने के बजाय चुपचाप कार्य करने का लक्ष्य रखने से ही जाति अमर और अजेय होती है।"

उद्देश्य

हमें विश्वास है, हमारे देश के नवयुवक इस पर आचरण करेंगे।

—लेखक

पात्र-सूची

शिवाजी—महाराष्ट्र देश के अधिपति ।

आबाजी सोनदेव मोरोपन्त शंभूजी कावजी रघुनाथ बल्लाल मीनाजी	शिवाजी के सेनापति और सहायक

गौहरबानू—बीजापुर के सूबेदार मुल्ला अहमद की सुन्दर पुत्रवधू

काशीबाई—आबाजी सोनदेव की बहिन ।

सोना बाड़ा	काशीबाई की प्रधान परिचारिकाएँ ।

अंजुमन—गौहरबानू की सेवा में नियुक्त परिचारिका ।

अन्य दो परिचारिकाएँ ।

स्थान—	काल—
उत्तर कोंकण का प्रदेश ।	२४ अक्टूबर, सन् १६५७ ई०

इस नाटक में आये हुए विशिष्ट शब्दों के अर्थ

१ कुनबी = खेती करनेवाली जाती जो शिवाजी की सेना में सम्मिलित थी।

२ गोन्धाली = प्राचीन वीर पुरुषों के गीत गानेवाले चारण ।

३ पंढरपुर = महाराष्ट्र का प्रधान धर्म-तीर्थ ।

४ पागादल = राजा के निजी घुड़सवारों का दल ।

५ पोवाड़ा = जन-साधारण का लोक-गीत

६ बर्गी = साधारण सिपाही ।

७ मावला = पूना के पश्चिम में मावल प्रांत का निवासी सैनिक ।

८ होंण = लगभग ४) के मूल्य का मराठी सिक्का ।

[सात बजे संध्या का समय, कल्याण के समीप मराठों का एक शिविर, पश्चिम में सह्याद्रि पर्वत श्रेणी की नीलिमा में डूबी हुई चोटियाँ हैं, जो उसी ओर खुलने वाली खिड़की से दीख रही हैं। नीली चोटियों के समीप उठती हुई चन्द्र की बंकिम कला, ज्ञात होती है जैसे किसी अवगुंठनमयी नववधू के केशपाश में पीछे की ओर उठती हुई चूड़ामणि है। वायु में शीतलता है। वातावरण शान्त है, किन्तु यह शान्ति जैसे अट्टहास के बाद की शान्ति है।

शिविर के खंभों में रूखापन है, किन्तु सुनहले रंग से रँगकर उन्हें सुन्दर बनाने का आयोजन किया गया है। पत्थर की दीवारों के ऊपर ज़री का चंदोवा है; जिसमें स्थान-स्थान पर मोतियों की लड़ियाँ झूल रही हैं। सामने तीन महराबें हैं और उनके समाप्त होने पर दीवाल पर रेशमी परदे हैं। उनके दोनों ओर दो बड़ी मछलियों के आकार बने हुए हैं। ज़मीन पर मखमल का फ़र्श बिछा हुआ है। बग़ल की दीवाल पर ढाल, तलवार, तीर और धनुष टँगे हुए हैं।

बीच में एक ऊँचा मसनद है जिसपर एक आसन रक्खा हुआ है। बाघ के चमड़े पर मखमल की झालरदार गद्दी है, जिसकी बगल में नीले मखमल की म्यान में तलवार सजाई हुई है। उस आसन के दोनों ओर दो भालों पर भी दो मछलियों के चित्र झूल रहे हैं। सामने एक छोटे से मृत्तिकास्तंभ पर पंच-प्रदीप जल रहे हैं। बीच के महराब के नीचे दरवाजे के दोनों ओर घोड़ों की पूँछ के चंवर हैं। दाहिने और बाएँ ओर जाने वाले दोनों मार्गों के द्वार पर दोनों बाजुओं में आम्र-पल्लवों से सजाए गए जल से भरे हुए मंगल घट हैं, जिनपर स्वस्तिका के चिह्न बने हुए

हैं। उनके समीप ही राजपताकाएँ हैं, एक जरी की और दूसरी भगवी वस्त्र की, जो स्वामी रामदास के गेरुरे वस्त्र की स्मृति में है।

कक्ष में जगमगाहट है। स्थान-स्थान पर दीप-कमल जल रहे हैं जिनमें अनेक रंगों के प्रकाश की व्यवस्था है। एक ओर शीतनिवारणार्थ अग्नि-पात्र है, जिसमें कभी-कभी लपट उठ जाती है, जो मराठों की तेजस्विता की परिचायिका ज्ञात होती है। थालियों में लावा के चक्र में धूप के धूम की लहरें उठ रही हैं। समस्त वातावरण में एक पवित्रता है। मसनद के समीप ही नीचे दो आसन और भी हैं। वे मखमल के न होकर कीमख्वाब के हैं। एक आसन पर गंगा (आयु २२ वर्ष) बैठी हुई एक फूल की माला गूँथ रही है। दूसरा आसन खाली है। सह्याद्रि की ओर खुलनेवाली खिड़की के समीप ही सोना (आयु २० वर्ष) खड़ी हुई चन्द्रकला को देख रही है।]

गङ्गा—[फूल की माला उठाते हुए] दो.......तीन.......चार...... बस केवल चार फूल चाहिए। सोना, सुख के चार दिन की तरह चार फूल। फिर यह माला..........।

सोना—[खिड़की से चाँद की ओर देखते हुए] यह माला पूरी न हो सकेगी, गंगा!

गङ्गा—[माला गूँथते हुए] पूरी न हो सकेगी? इतने फूल गूँथ लूँ तो माला पूरी हो जाय। बस, अन्त में सिर्फ चार फूल चाहिए, उनका झुमका लगाना है।

सोना—[पूर्ववत् चाँद की ओर देखते हुए] यह माला पूरी न हो सकेगी। [गङ्गा की ओर मुड़कर] हमारे देश के कितने लाल राज्य की माला बनाने में बलि चढ़ गए, किन्तु आज तक राज्य की माला पूरी नहीं बन सकी। अभी और कितने ही फूल चढ़ेंगे!

गंगा—तू तो हमेशा इन्हीं बातों को सोचा करती है। खिड़की के पास खड़ी हुई रात-दिन प्रतीक्षा करती रहती है। सोना, तेरा भाई अवश्य लौट आएगा; वह कितना वीर है, कितना साहसी है, कितना पराक्रमी!

सोना—वीर, साहसी, पराक्रमी! गंगा वीर और पराक्रमी की आयु बहुत थोड़ी होती है। [स्वप्न देखने की भाँति]............आधी रात थी, मेरा भाई सो रहा था। भोंसले श्रीमंत शिवाजी की आज्ञा मिली कि रात ही में कल्याण पर आक्रमण हो। वह उठ खड़ा हुआ। तलवार ली और घोड़े पर सवार हो गया। उसने बाग मोड़ी और काली दिशाओं में तारे की भाँति डूब गया। गंगा, मैं अपने भाई को अपने हाथों से तलवार भी नहीं दे सकी, मंगल-तिलक भी नहीं कर सकी!

गंगा—[माला गूँथते हुए] सच्चे वीरों को तिलक की आवश्यकता नहीं होती।

सोना—मैंने इसी में सन्तोष किया, गंगा। किंतु मैं डरती हूँ कि उसका मंगल-तिलक न होने से कहीं कुछ अनिष्ट न हो। मेरे मंगल-तिलक में बड़ा बल है। मैं पिछली लड़ाइयों में उसे अपने हाथ से तलवार और भाला देती थी। कहती थी कि महाराष्ट्र जननी की लाज तुम्हारे हाथ में है भैया! कभी पीछे मत हटना। गंगा, वह मेरी दी हुई तलवार को माथे से लगाकर कहता था—बहिन! तुम्हारी आज्ञा श्रीमंत भोंसले की आज्ञा है, महाराष्ट्र-जननी की आज्ञा है। मैं आरती उतारती और जब आरती-पात्र में मेरा एक स्नेहाश्रु ढुलक कर गिर पड़ता तो गंगा, वह मेरे नेत्रों में उलझे हुए आँसू को पोंछकर कहता था—बहिन! इन आँसुओं से मेरा पथ गीला मत करो। मेरा

घोड़ा आगे नहीं बढ़ सकेगा। उन आँसुओं में हँसने की चेष्टा करती हुई उसकी आरती उतारती थी। घूमती हुई आरती में दीप का आलोक उसकी परिक्रमा करता सा जान पड़ता था। मैं समझती थी कि यह आलोक-मंडल भवानी का कवच है। लेकिन इस बार मैं अपने भाई की आरती नहीं कर सकी! इस बार यह नहीं हो सका, कुछ नहीं हो सका!

गंगा—सोना, तू इतना दुःख क्यों करती है? महाराष्ट्र की बहिनें उतना दुःख कभी नहीं करतीं।

सोना—नहीं करती गंगा, किन्तु जब [**खिड़की से बाहर की ओर देखती हुई**] इस सह्याद्रि की चोटी पर रात आती है तो जैसे अँधेरे में सारी भयानकता जाग उठती है, संग्राम में मरे हुए वीरों की मौत जाग उठती है, आकाश जगमगाता है तब एक काली-काली छाया यहाँ से वहाँ······वहाँ के यहाँ घूमने लगती है·········पेड़ कंकाल की तरह अकड़ जाते हैं······हवा···का एक शीत झोंका तलवार की तरह घूमकर इस खिड़की के पास तक चला आता है। उसके साथ वह काली छाया भी बहकर चली आती और खिड़की के समीप ठिठक कर कहती है—"बहिन! मेरा मंगल-तिलक करो, मेरा मंगल-तिलक करो, बहिन! तुमने मुझे तिलक नहीं किया······मैं शत्रु के हाथों मारा गया·········" ओह, मेरा भाई!·········मेरा भाई!

[**खिड़की पर सिर झुका लेती है। गङ्गा उठकर शीघ्रता से सोना के समीप जाती है और उसके कंधे पर हाथ रखती हुई सन्तोष देने की चेष्टा करती है।**]

गङ्गा—सोना, तू पागल तो नहीं हो गई? कैसी-कैसी बातें करती है! चल इधर आ, रात-दिन खिड़की के पास खड़ी होकर न जाने

क्या-क्या सोचा करती है। ऐसी भी कोई प्रतीक्षा करती है ? कितनों के भाई युद्ध में लड़ने के लिए नहीं जाते ! कितनों के भाई लौटकर नहीं आते। वीर कन्याएँ कहीं इस प्रकार दुखी हुआ करती हैं ? क्या वे इस तरह प्रतीक्षा किया करती हैं ? तेरा भाई आएगा तो क्या वह खिड़की के उस पार ही रह जायगा ? [दूसरे आसन पर बिठलाती है।] यहाँ बैठ; तू महाराष्ट्र की बहिनों को लज्जित करती है।

सोना—[बैठते हुए] मैं लज्जित नहीं करती, बहिन ! यदि मैं उसे अपने हाथों से विदा कर पाती; उसकी आरती उतार लेती तो मुझे फिर किसी बात की चिन्ता न रह जाती।

गंगा—[दृढ़ता से] तो समझ ले महाराष्ट्र-जननी ने उसकी आरती उतारी है ! महाराष्ट्र जननी ने जो सह्याद्रि के सिंह पर बैठी है, कोंकण मुकुट धारण किए हुए है। वह सोना नदी की मेखला से सारी दिशाओं को प्रतिध्वनित कर रही है। उसके चरणों में कृष्णा तरंगित हो रही है। ऐसी जननी ने तेरे भाई का मङ्गल-तिलक किया है ! सोना, महाराष्ट्र-जननी ने तेरे भाई की आरती उतारी है।

सोना—[शून्य दृष्टि से] महाराष्ट्र-जननी ने………मेरे भाई की ………आरती उतारी………है ! मेरा भाई धन्य……है, गंगा !

गंगा—[पूर्ववत् दृढ़ता से] फिर तू इतना दुःख क्यों करती है ? यदि तेरा भाई न लौटे तो वीरा बहिन की तरह अपने को धन्य समझ। उसकी कीर्ति में पोवाड़ा गाया जायगा। गोन्धाली उसके चरित्र का गान करेंगे। दक्षिण की समतल भूमि में, सह्याद्रि की गहरी तराई में, पहाड़ियों की ऊँची चोटियों पर तेरे भाई के गान होंगे।

सोना—[सम्हलकर] मेरा भाई अमर होगा !

गंगा—[दृढ़ता से] निश्चय।

सोना—मेरा हृदय बहुत दुर्बल है। इसीलिए एक क्षण में भाई की ममता जाग उठती है, नहीं तो बहिन के लिए भाई का युद्ध अभिमान की बात है।

गंगा—यह बात तेरे ही योग्य है सोना। तेरे इस दुःख करने में महाराष्ट्र की नारियों का अपमान होता है। अब तो तू इस तरह दुःख नहीं करेगी?

सोना—[सम्हल कर] नहीं।

गंगा—[प्यार से] तू बहुत अच्छी है, सोना! [अपने आसन पर बैठती हुई] देख मेरी माला अभी तक नहीं बन पाई। तेरे दुःख ने मेरी माला पूरी नहीं होने दी।

सोना—मैं सहायता करूँ, बहिन?

गंगा—रहने दे, मैं पूरी कर लूँगी। सिर्फ थोड़े से फूल और रह गए हैं। और काशीबाई ने मुझे ही तो आज्ञा दी है कि मैं माला गूँथूँ। [माला फिर गूँथती है।] उन्हें मेरी माला बहुत पसन्द आती है। तू जा, देख आबाजी सोनदेव के आने में कितना विलम्ब है।

सोना—[अपने ही विचारों में] तो क्या मैं माला भी नहीं गूँथ सकती?

गंगा—तू गूँथ क्यों नहीं सकती; किन्तु काशीबाई की रुचि इतनी सुकुमार है कि थोड़ी सी भूल उनकी आँखों में चुभ जाती है। शृंगार की विशेषता तो महाराष्ट्र में केवल वही जानती हैं। वे कली की आयु के दिन बतला सकती हैं, वे फूल की अवस्था बतला सकती हैं, फूलों के हलके गहरे रंगों के अनगिनत भेद बतला सकती हैं। स्नान कर वे आती होंगी।

सोना—तब तो मैं उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकती।

गंगा—तभी तो मैं कहती हूँ कि तू जा। तेरी सहायता मेरे काम न आ सकेगी। जा देख, आबाजी सोनदेव के आने में कितनी देर है।

सोना—अच्छा बहिन, जाती हूँ। [प्रस्थान]

गंगा—बस, मेरी माला भी समाप्त हो गई। यह गाँठ लगा दूँ [माला में गाँठ लगाती है] अब केवल भुमका रह गया है। [नेत्र उठाकर सोना को न पाकर] गई? बेचारी सोना! [उठ खड़ी होती है।] युद्ध के सब सिपाही लौट आए, यदि नहीं लौटा तो उसका भाई, यादव रामचन्द्र! [स्वयं खिड़की के पास जाकर खड़ी होती है।] यादव... ...रामचन्द्र......! [ठंढी साँस लेकर] शायद लौट आए! [फिर खिड़की के बाहर देखती है।]

[काशीबाई (आयु १८ वर्ष) का प्रवेश। यौवन और सौन्दर्य की सम्पत्ति से परिपूर्ण। आँखों में सरसता और आकर्षण। माथे में लाल बिन्दी, केशों में लाल फूलों का शृंगार, गौर वर्ण और शरीर में कमनीयता। शरीर में आभूषणों के स्थान पर रङ्ग-बिरङ्ग पुष्पों का शृंगार किए हुए है। ओठों पर मुस्कुराहट। वह शिविर में प्रवेश करते ही एक नवीन वातावरण की सृष्टि करती है। हाथ में फूल की एक माला है जो उँगलियों में उलझी हुई है। सितार पर नाचती हुई रागिनी की भाँति वह रङ्गमंच पर प्रवेश करती है।]

काशी—[भाव-मुद्रा में] सह्याद्रि की चोटी पर चन्द्रकला की शोभा किन आँखों का सपना है? [खिड़की के समीप जाकर और आकाश की ओर संकेत करते हुए] गंगा, यह चन्द्रकला मेरे जीवन की ऐसी सहचरी है, जो मुझसे आँखमिचौनी खेलना जानती है।

गंगा—[सिर झुका कर] सत्य है, देवी।

काशी—[उसी स्वर में] और जब मैं वीणा पर गीत गाती हूँ तो

इस चन्द्रकला की किरणों में मेरी वीणा के तार संगीत धारा के गूँजते हुए निर्झर जैसे मालूम पड़ते हैं। ओह······मैं कितनी प्रसन्न हूँ इस चन्द्रकला को देखकर। तारों के बंदनवारों के बीच से चलकर यह जैसे आकाश-गंगा में स्नान करने जा रही है।

गंगा—सत्य है देवी, अन्तर केवल यही है कि यह स्नान करने जा रही है और आप स्नान करके आ रही हैं। उसके लिए तारों के बंदनवार हैं, आपके लिए स्वागत की मालाएँ।

काशी—[हँसकर] तू बहुत प्रियवादिनी है। तेरी माला बनी या नहीं?

गंगा—माला तो तैयार है, केवल उसका झुमका नहीं बन सका, देवी!

काशी—तो बिना झुमके के माला कहीं अच्छी लगेगी? बिना झुमके के माला तो वैसी ही है जैसे बिना कुंकुम की बेंदी के मैं। [उत्तर की प्रतीक्षा में] ऊँ? [मुस्कान]

गङ्गा—ठीक कहती हैं, देवी। झुमके के लिए लाल फूल चाहिए; वे रात में तोड़े नहीं जा सकते।

काशी—क्यों, रात में तोड़े नहीं जा सकते?

गङ्गा—कहते हैं, रात में फूल तोड़ना ठीक नहीं होता।

काशी—[शब्दों पर रुक-रुक कर] रात में······फूल······तोड़ना······ठीक······नहीं······होता। [सोचकर] शायद अपनी सुगन्धि की चादर ओढ़कर जब फूल रात में सपने देखते हैं तो उन्हें जगाना ठीक नहीं है।

गङ्गा—सत्य है, देवी।

काशी—या चन्द्र की किरणों के रास्ते जब उनका मन कली के

समीप जाकर लौट आता है तो उन्हें रास्ते से दूर करना ठीक नहीं है। क्यों गंगा ?

गंगा—देवी, आप ठीक कहती हैं।

काशी—गंगा मेरी मालाएँ देख ! ऐसी हैं जैसे फूल की चलती-फिरती क्यारियाँ, सुगंधि की रंगरेलियाँ, सुन्दरता की आकाश-गंगाएँ। ओह, इन्हें कोई पहने तो चाँदनी खिल जाए। हाथ में ले तो चन्द्रमा उतर आए और इन्हें यों झुलाए [मालाओं को झुलाती है] तो महा-राष्ट्र में पराक्रम बरसानेवाली बूँदें बरस जाएँ !

गंगा—सच है, देवी।

काशी—अच्छा देख गंगा, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे भाई आबाजी सोनदेव जीतकर लौटे हैं। पराक्रमी, वीर, साहसी ! कहते हैं वीर और पराक्रमी की आयु थोड़ी होती है। किन्तु मेरे भाई आबाजी चिरंजीवी हैं। श्रीमंत शिवाजी भोंसले ने बीजापुर के हाथ से कल्याण और भिवंडी नाम के शहर छीन लिए हैं न ! महाराष्ट्र में अपार संपदा आई है, और उस संपदा के लानेवाले मेरे भाई आबाजी हैं। उन्होंने कल्याण का सारा खजाना लूट लिया है। उसी विजय के समा-रोह में तो मैंने यह कक्ष इतना सुन्दर सजाने का आयोजन किया है।

गंगा—आबाजी सोनदेव बहुत बड़े वीर हैं, देवी।

काशी—निस्सन्देह, मैंने उनके जाते समय आरती उतारी थी, उनके हाथ में तलवार दी थी, उनके सिर पर शिरस्त्राण बाँधा था और उनके लिए बहुत मङ्गल कामनाएँ की थीं।

गंगा—आपकी मङ्गल कामनाओं ने ही उन्हें विजयी बनाया, देवी......देवी......किन्तु.........।

काशी—कहो कहो......रुक कैसे गई ?

गंगा—एक ऐसी भी बहिन है देवी, जो अपने भाई की आरती नहीं उतार सकी, उसके हाथों में तलवार नहीं दे सकी। वह भाई भी वीर, साहसी, पराक्रमी है, किन्तु वह नहीं लौटा।

काशी—वह कौन है.........और ऐसी कौन बहिन है?

गंगा—सोना, बेचारी सोना बहुत दुखी है।

काशी—[सोचकर] हाँ, उसका भाई यादव रामचन्द्र लौटकर नहीं आया। मैंने भी सुना है। वह मेरे भाई आबाजी का बड़ा विश्वासी सिपाही है, बहुत पराक्रमी।

गंगा—सोना बहुत दुःखी थी। मैंने उसे अभी-अभी समझाया है। बड़ी कठिनता से उसके आँसू रुके और विजय के समारोह में तो उसे अपने भाई की याद और भी अधिक हो जाती है।

काशी—स्वाभाविक है। मैं उसे समझाऊँगी। महाराष्ट्र वीरों का युद्धक्षेत्र से न लौटना कोई विशेष बात नहीं है। कोई तारा उदय होता है। कोई तारा डूब जाता है। फिर भी भाई बहिन की ममता का मूल्य कम नहीं है। मैं अपने भाई से कहूँगी कि वे यादव रामचन्द्र की खोज में अश्वारोहियों को भेजें।

गंगा—आपकी बड़ी कृपा होगी, देवी।

काशी—शीघ्र ही पता लग जायगा। भाई आबाजी की आज्ञा में सारी महाराष्ट्र सेना है। तभी वे बीजापुर का खजाना लूट सके।

गंगा—सुनते हैं, उस खजाने में अनेक बहुमूल्य रत्न हैं।

काशी—[प्रसन्नता से] अनेक बहुमूल्य रत्न! और गंगा, जानती है तू, एक रत्न तो बहुत ही बहुमूल्य है।

गंगा—वह कौन सा देवी?

काशी—तू नहीं जानती। भाई आबाजी ने अरब जाति के रईस

और कल्याण के सूबेदार मुल्ला अहमद की पुत्रवधू को भी बन्दी कर लिया है। बड़ी सुन्दर है वह।

गंगा—आपसे भी अधिक, देवी।

काशी—मुझसे [हँसकर] क्या कहूँ, तू ही देखकर निर्णय कर ले। किन्तु सारे दक्षिण में उसके रूप की चर्चा है। मैंने भूषण कवि से कहा 'कवि! गौहरबानू के सौन्दर्य में कुछ छन्द लिखो', कहने लगे, 'पंढरपुर में स्नान कर लूँ तब लिखूँगा' जैसे गौहरबानू की प्रशंसा करने के लिए धर्म-तीर्थ में स्नान करना आवश्यक है। [हँसती है।] गंगा, ऐसी है वह गौहरबानू!

गंगा—देवी, तब तो वह बहुत सुन्दर है!

काशी—[मुस्कान रोककर] मुझसे भी अधिक!

गंगा—आपसे अधिक नहीं हो सकती, देवी।

काशी—मैं तेरी बातों से प्रसन्न हूँ गंगा, किन्तु यह तब कह जब तू गौहरबानू को देख ले। [उत्तर की प्रतीक्षा में] एँ! अच्छा तो तेरी माला कब पूरी होगी? यह माला मैं गौहरबानू के लिए तैयार करा रही हूँ।

गंगा—देवी, मैं तो समझती थी कि यह माला आपके कण्ठ की शोभा प्राप्त करेगी।

काशी—नहीं, भाई आबाजी की इच्छा है कि आज गौहरबानू का पूरा श्रृंगार हो। वह आज रात की रानी बन जाय। तू यह माला जल्दी ही पूरी कर।

गंगा—[अस्थिर होकर] किन्तु झुमके के लिए लाल फूल नहीं हैं, देवी!

काशी—लाल फूल चाहिये झुमके के लिए?

गंगा—जी हाँ।

काशी—सफेद फूल काम नहीं दे सकते ?

गंगा—आपकी आज्ञा से सफेद फूल भी काम दे सकते हैं।

काशी—किन्तु सफेद फूल भी तो नहीं हैं।

गंगा—जी, आपके शृङ्गार में सभी फूलों का सौभाग्य सजा दिया गया।

काशी—थोड़े से फूल भी नहीं हैं ?

गंगा—जी नहीं, संध्या होते ही शृंगार की मालाएँ बन गईं। कुछ तो श्रीमंत भोंसले की सेवा में भेज दी गईं और कुछ आपकी सेवा में। फूल भी आबाजी ने मँगवा लिये हैं। संभव है, श्रीमंत के स्वागत में उछालने के लिए।

काशी—[**टहलते हुए**] और लताओं के फूल सो रहे हैं !

गंगा—जी।

काशी—[**कक्ष में टहलते हुए खिड़की के समीप आकर आकाश की ओर देखते हुए**] इस चन्द्र का ही झुमका बना ले। यह जाग रहा है। माला के स्थान पर चन्द्रहार हो जायगा। [**उत्तर की प्रतीक्षा में**] एँ !

गंगा—[**किंचित हँसकर**] देवी, आप बहुत सुन्दर बातें करती हैं।

काशी—गंगा, तू मुझे बहुत प्रिय है। जहाँ जाऊँगी। अपने साथ तुझे भी ले जाऊँगी।

गंगा—कहाँ जाएँगी आप, देवी ?

काशी—[**कुछ संकुचित होकर**] अभी से सारी बातें बतला दूँ ! कुछ बातें तो मेरे मन में रहने दे। किन्तु गंगा, तुझे भी एकाकी न रहना पड़ेगा। तू वहीं जायगी जहाँ महाराष्ट्र का गौरव होगा।

गङ्गा—यानी आप श्रीमती काशीबाई.......

काशी—अभी चाहे जो कह ले। और सुन ! हम लोगों के साथ

जायगी यह चन्द्रकला। [चन्द्रकला की ओर संकेत करती है] किन्तु गंगा, यह चन्द्रकला बहुत भोली-भाली है। चाहो तो इसे निर्मल जल में उतार लो, चाहो तो इसे द्राक्षासव में उतार लो। इसे तो केवल नृत्य करना आता है, लहराना आता है। न वह जल पीती है, न द्राक्षासव।

गंगा—देवी, वह कुछ नहीं पीती।

काशी—ओह, यदि यह चन्द्रकला एक-सी रहती तो शायद यौवन भी बुढ़ापे में कभी न बदलता, क्यों गंगा?

गंगा—सत्य है, देवी।

काशी—[गहरी सांस लेकर] अच्छा, जाने दे इन बातों को। वह तो मैं चन्द्रकला को देखकर उमंग में भर जाती हूँ, नहीं तो युद्ध के अवसरों पर ऐसी बातें कहाँ सूझती हैं। गंगा, भाई आबाजी आने ही वाले हैं। गौहरबानू के सम्बन्ध में शायद वे मुझसे कुछ कहें। गौहर का शृङ्गार तो होना ही है। तू यह माला जल्दी से तैयार कर ले। ले मेरे केश-पाश से लाल फूल निकाल ले। दूसरे फूलों को क्यों जगाती है?

गंगा—आपके केशों की शोभा बिगड़ जायगी, देवी। [प्रशंसा का अभिनय]

काशी—क्या चिन्ता है!

गंगा—इन फूलों को आपके केश सजाने का आज जो सौभाग्य मिला है, वह इन्हें फिर कभी नहीं मिलेगा, देवी!

काशी—अधिकार के क्षणिक होने में ही उसका सौंदर्य है। ले, निकाल। [गंगा की ओर पीठ देकर खड़ी हो जाती है।]

गंगा—जो आज्ञा [गङ्गा काशी की केशराशि से फूल चुनती है।]

काशी—[फूल चुने जाते हुए] ये फूल भी कहते होंगे 'हम काशी और गौहर की तुलना* करेंगे, कौन अच्छी है!' इन फूलों की माला

आज गौहर के गले में पड़ेगी, गंगा!

गंगा—[फूल चुनते हुए] गौहर के हृदय में पड़ने पर ये फूल मुरझा जायँगे, देवी!

काशी—क्यों?

गंगा—स्वदेश का व्यक्ति विदेश में जाकर उदास हो जाता है।

[सोना का प्रवेश। उसकी मुखमुद्रा पूर्ववत् मलीन है।]

सोना—[प्रणाम करते हुए] देवी, श्रीमान् आबाजी सोनदेव आ रहे हैं।

काशी—मैं भी उनकी प्रतीक्षा में हूँ, शायद वे श्रीमंत शिवाजी भोंसले के दर्शन करके आ रहे हैं। किन्तु सोना, मैंने सुना है, तू बहुत उदास है?

सोना—[अवरुद्ध स्वर से] देवी ......! [रुक जाती है।]

काशी—मैं जानती हूँ कि यादव रामचन्द्र के न आने से तू उदास हो गई है। किन्तु महाराष्ट्र की अन्य बहिनों के सुख में तेरी उदासी काँटा बनकर न कसक जाय, इस बात का ध्यान रख। तू क्या महाराष्ट्र के लिए इतना भी उत्सर्ग नहीं कर सकती, सोना?

सोना—मैं जीवन तक उत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत हूँ, देवी!

काशी—साधुवाद! मैं यह सुनकर प्रसन्न हूँ। किन्तु यह मत समझ कि मुझे यादव रामचन्द्र के न लौटने का दुःख नहीं है। मैं तो महाराष्ट्र के प्रत्येक वीर के लिए दीर्घायु होने की कामना करती हूँ, जिससे वह महाराष्ट्र और श्रीमंत शिवाजी भोंसले की सेवा अधिक से अधिक दिनों तक कर सकें। मैं अभी भाई आबाजी से कहकर अश्वारोहियों को भिजवाऊँगी। वे देखें कि यादव कहाँ रह गया है।

सोना—आपकी बड़ी कृपा होगी।

काशी—कृपा की कोई बात नहीं है। गंगा, तू सोना को सान्त्वना दे।

गंगा—जो आज्ञा देवी।

काशी—सोना, तू जा। मैं अब अपने भाई से बात करूँगी।

सोना—जो आज्ञा, देवी! [प्रणाम कर प्रस्थान]

काशी—गंगा, भाई आबाजी आनेवाले हैं। यह लाल फूल मुझे दे दे, मैं स्वयं झुमका बनाऊँगी। यह माला भी यहीं सिंहासन पर छोड़ दे, अब तेरे पास झुमका बनाने का समय नहीं है। तू सोना को सान्त्वना दे।

गंगा—जो आज्ञा देवी। [लाल फूल की अंजलि सामने फैला देती है काशी फूल ले लेती है। इसके बाद वह माला सिंहासन के कोने में टांग देती है तथा प्रणाम कर चली जाती है।]

काशी—[अंजलि के लाल फूल देखती हुई] स्वदेश का व्यक्ति विदेश में जाकर उदास हो जाता है! मेरे स्वदेश के व्यक्ति......

[नैपथ्य में "आबाजी सोनदेव की जय।" काशी सजग हो जाती है और नैपथ्य की ओर देखती है। (आबाजी का स्वर) "सब सीमा में रहने की व्यवस्था ठीक है?" (एक स्वर) "सब ठीक है श्रीमान्।" (आबाजी का स्वर) "सैनिक अपना भोजन समाप्त कर चुके?" (दूसरा स्वर) "कर चुके, श्रीमान्।" (आबाजी का स्वर) "श्रीमंत शिवाजी भोंसले के दर्शन के लिए तैयार रहो।" (तीसरा स्वर) "जो आज्ञा।" (आबाजी का स्वर) "अच्छा मैं शिविर में चलता हूँ।"

काशी ध्यान से सुनकर सिंहासन के समीप खड़ी हो जाती है। कुछ क्षणों में आबाजी सोनदेव (आयु २५ वर्ष) का प्रवेश। बलिष्ठ शरीर। चाल में गम्भीरता। महाराष्ट्र के गौरवस्तंभ, बड़े बड़े नेत्र, शक्ति

और साहस के प्रतीक रेशमी वेष-भूषा। लाल रङ्ग का अँगरखा और नीले रङ्ग का चूड़ीदार पैजामा। मराठी ढङ्ग की पगड़ी जिसमें एक कलगी लगी हुई है। गेहुँआ रङ्ग। माथे में त्रिपुण्ड और हाथ में तलवार। कमर में जरी की पेटी और वक्ष पर मोतियों की कुछ मालाएं। साहस की गति की भांति प्रवेश।]

आबाजी—काशी तुम यहाँ हो ?

काशी—[आगे बढ़कर] भाई को प्रणाम।

आबाजी—[हाथ बढ़ाकर] सुखी रहो, काशी! तुम यहाँ हो ? मैं तुम्हें अन्तःपुर के शिविर में खोज रहा था। श्रीमंत शिवाजी हमारी विजय-संपत्ति देखने की कृपा करेंगे। उसके लिए सब तैयारियां हो चुकीं ? तुम्हारा यह कक्ष तो पूर्ण है ?

काशी—मेरी सब तैयारियाँ पूरी हो गईं। यह देखिए, यह कक्ष पूर्ण हुआ है या नहीं ?

आबाजी—[कक्ष के चारों ओर दृष्टि डालते हुए] बहुत सुन्दर है। [एक एक वस्तु का नाम लेकर प्रशंसात्मक शब्दों में रुकते हुए] सिंहासन ·········दो बड़ी मछलियों के राजचिह्न·········जरी और भगवा वस्त्र की पताकाएँ·········मङ्गलघट·········लावा में धूप का धूम ·········मृतिकास्तूप पर पंच-प्रदीप·········भिन्न-भिन्न भाँति के शस्त्र·········चँवर·········सब ठीक है। [सिंहासन पर टँगी हुई माला को देखकर] अच्छा, यह सुन्दर माला भी है ? श्रीमंत के लिए मालाओं का प्रबन्ध तो प्रथम शिविर ही में है।

— काशी—यह माला श्रीमंत के लिए नहीं है। यह माला है·····

आबाजी—[बीच ही में] गौहरबानू के लिए। हाँ, स्मरण आया! कार्य की व्यस्तता में मैं इन बातों को भूल गया हूँ।

काशी—[किंचित मुस्कराहट के साथ] किन्तु गौहरबानू तो नहीं भूली जा सकती।

आबाजी—नहीं भूली जा सकती काशी, उसी गौहरबानू के लिए तो मुझे यह सब प्रबन्ध करना पड़ा। यदि कल्याण-विजय में गौहरबानू मेरे हाथ न लगती तो सैनिकों के शिविरों में तुम लोगों की क्या आवश्यकता थी? श्रीमन्त की आज्ञा है कि सेना के साथ न स्त्रियाँ रह सकती हैं और न दासियाँ। किन्तु गौहरबानू की मर्यादा रक्षण के लिए मुझे इस शिविर में अन्तःपुर का प्रबन्ध भी करना पड़ा। मैंने श्रीमन्त से गौहरबानू के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा, किन्तु मैंने उनसे निवेदन किया कि कल्याण-विजय के समारोह में महाराष्ट्र की स्त्रियों का भी भाग हो। इस बहाने मैंने गौहरबानू के लिए पूरा वातावरण उपस्थित कर लिया।

काशी—[प्रशंसा के स्वरों में] भाई, यह सब आपकी कार्य कुशलता है। इसीलिए तो आप अपने आक्रमणों में सदैव सफल होते हैं।

आबाजी—यह भवानी की कृपा और तुम्हारी मंगल-कामना है, काशी!

काशी—[उल्लास से] महाराष्ट्र की ललनाओं के मङ्गल-तिलक में बड़ा बल है। मेरी आरती निष्फल नहीं जा सकती।

आबाजी—[मुस्करा देते हैं।]

काशी—इसीलिए इतने बड़े आक्रमण के करने के अन्तर आप लौट सके।

आबाजी—निस्सन्देह।

काशी—किन्तु भाई, इस शिविर में एक बहिन ऐसी भी है जिसका भाई नहीं लौटा!

आबाजी—कौन ? सोना ?

काशी—हाँ भाई ! उसके भाई यादव की खोज होनी चाहिए ।

आबाजी—काशी, मैंने पहिले ही दो अश्वारोहियों को यादव की खोज में भेज दिया है। जिस दल में यादव था वह दल का दल नहीं लौट सका। इसलिए यादव का विवरण ज्ञात नहीं हो सका। सोना के साथ अन्य बहिनें भी तो दुःखी होंगी। सोना तुम्हारे पास है, अतः तुम उसी का दुःख जानती हो।

काशी—भाई, यादव के साथ अन्य सैनिकों की तुलना नहीं हो सकती।

आबाजी—इसीलिए कि वह तुम्हारी सोना का भाई है ?

काशी—इसलिए भी कि वह एक पराक्रमी और साहसी योद्धा है।

आबाजी—यदि कोई सैनिक वीर और पराक्रमी नहीं है तो वह महाराष्ट्र का सैनिक नहीं है। मेरे लिए सब सैनिक समान हैं।

काशी—फिर तो उन सब का विवरण मिलना चाहिए।

आबाजी—वह विवरण मुझे श्रीमन्त की सेवा में भी उपस्थित करना है।

काशी—ठीक है, मैं सोना से कह दूँगी। इससे उसे अवश्य सन्तोष होगा।

आबाजी—[मुस्कराकर] और तुम्हें तो सन्तोष है, काशी ?

काशी—मुझे ? आप कुबेर की सम्पत्ति लूटकर लाए। सकुशल और सानन्द, और सन्तोष न हो ? मैं तो फूली नहीं समाती। मेरे भाई ने महाराष्ट्र गौरव को इतिहास में अमर कर दिया है।

आबाजी—केवल इस विजय-यात्रा की सम्पत्ति से !

काशी—नहीं, महाराष्ट्र में जागरण उत्पन्न करने के कारण।

आबाजी—उसका एक मात्र श्रेय श्रीमन्त शिवाजी महाराज को है। शक्ति के अवतार, भवानी के भक्त! काशी! देश के पुण्य से ही श्रीमन्त उत्पन्न हुए हैं। महारानी जीजाबाई के वरदान से ही श्रीमन्त महाराष्ट्र के संचालक हैं। जावली जीतने के बाद जब श्रीमन्त ने रायगढ़ का किला मोरे के हाथ से छीना तभी ज्ञात हुआ कि देश के पश्चिम में भी एक सूर्य उदय हो गया है। काशी! मैं तो उस सूर्य की एक किरण मात्र हूँ।

काशी—सत्य है भाई, उन्हीं से महाराष्ट्र में स्वाधीनता का प्रकाश फैला हुआ है। श्रीमन्त का यश हम लोगों के मङ्गल-तिलक से भी अधिक शक्तिशाली है।

आबाजी—हाँ काशी, श्रीमन्त भोंसले अवसर से लाभ उठानेवाले हैं। दो वर्षों से मुग़ल शहज़ादे दिल्ली के सिंहासन के लिए युद्ध कर रहे हैं—दारा, शुजा, मुराद और औरङ्गजेब। औरङ्गजेब मीर जुम्ला को दक्षिण का कार्य भार सौंपकर उत्तर भारत चले गये हैं। उनकी ओर से श्रीमन्त भी पूर्ण रूप से निशंक हैं। इधर बीजापुर, मुगलों की सेना से पराजित हो ही गया था। वहाँ राजनीतिक पराजय के साथ शासन की भी पराजय हो गई। बीजापुर के मन्त्री कहते थे कि सेनापतियों के दोष से बीजापुर का पतन हुआ और सेनापति कहते थे कि मन्त्री की अदूरदर्शिता से बीजापुर की सेना हार गई। बात यहाँ तक बढ़ी कि सेनापतियों ने बीजापुर के प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद का खून कर दिया। काशी......खून कर दिया। राजनीति रक्त में डूब गई। ऐसा अवसर श्रीमन्त हाथ से कब जाने दे सकते थे। उन्होंने सह्याद्रि पार कर उत्तर कोंकण लूट लिया और कल्याण और भिवंडी के दो

शहर बीजापुर राज्य से छीन लिए। श्रीमन्त के इस आक्रमण में मेरा बहुत हाथ है, काशी···ओह! मैं तुमसे राजनीति की बातें करने लगा।

काशी—नहीं भाई! महाराष्ट्र की स्त्रियाँ राजनीति को भी अपने जीवन का अंग समझती हैं।

आबाजी—[सिर हिलाकर] हाँ, यह बात तो है। तो मैंने इस आक्रमण में जो सम्पत्ति लूटी है वह आज तक श्रीमन्त के किसी आक्रमण में नहीं मिली! क्यों काशी, तुम्हें अपने भाई की इस वीरता पर अभिमान है?

काशी—अपार रत्नराशि, अनगिनत वस्त्राभूषण, इतनी सम्पत्ति कौन एकत्रित कर सका है? मेरे भाई की वीरता शब्दों में नहीं कही जा सकती। प्रत्येक महाराष्ट्र की स्त्री यह चाहती है कि उसे आबाजी सोनदेव जैसा भाई मिले। इस दृष्टि से मेरे भाग्य से अन्य बहिनों को ईर्ष्या हो सकती है।

आबाजी—काशी, यदि अन्य स्त्रियाँ चाहें तो वे भी मुझे अपना भाई समझ सकती हैं।

काशी—कितनी स्त्रियाँ आपको अपना भाई नहीं समझतीं?

आबाजी—यह उनकी उदारता है।

काशी—एक बात पूछूँ, भाई?

आबाजी—प्रसन्नता से।

काशी—आप अप्रसन्न तो नहीं होंगे?

आबाजी—बहिन से कोई भाई अप्रसन्न हो सकता है?

काशी—यह गौहर··· ···गौहरबानू कौन है?

आबाजी—एक बार और यह प्रश्न पूछ चुकी हो, काशी!

काशी—किन्तु आपने सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया।

आबाजी—[तीक्ष्णता से] और मैं क्या उत्तर दूँ ! वह कल्याण के सूबेदार मुल्ला अहमद की पुत्रवधू है ।

काशी—देखिए, आप अप्रसन्न हो रहे हैं। [बुरा मानकर] अब मैं आपसे कोई बात नहीं पूछूँगी ।

आबाजी—[हँसकर] बुरा मान गई। अच्छा, पूछो क्या पूछना चाहती हो ?

काशी—अब मैं कुछ नहीं पूछूँगी ।

आबाजी— अच्छा काशी, मुझे क्षमा करो। अब सचमुच अप्रसन्न नहीं होऊँगा ।

काशी [स्वस्थ होकर] वह बहुत सुन्दर है ?

आबाजी—[मुस्करा कर] हाँ, वह बहुत सुन्दर ।

काशी—[सीधा प्रश्न न पूछ सकने के संकोच में हकलाकर] तो... तो वह बहुत सुन्दर क्यों है ?

आबाजी— हँसकर] यह कौन सा प्रश्न है ? मैं जानता हूँ, तुम क्या पूछना चाहती हो ।

काशी—[लज्जित होकर] अच्छा, तो बतलाइए कि आप उसे क्यों लाए हैं ? श्रीमंत भोंसले का तो कहना है कि केवल पुरुषों ही को कैद करो; स्त्रियों को कैद मत करो। क्या इस बात की आज्ञा भी आपने श्रीमंत से ले ली है ?

आबाजी—इस बात की आज्ञा तो नहीं ली, काशी ! किन्तु गौहर की नहीं, देवी है। उसकी सुन्दरता की कहानी समस्त दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। यदि चाँदनी पृथ्वी पर अवतार लेकर आए तो उससे सुन्दर नहीं हो सकती। इसके साथ ही वह महान् विदुषी है। वह तुम्हारी भाषा भी अच्छी तरह जानती है ।

काशी—तो, मैं भी तो उसकी भाषा जानती हूँ ।

आबाजी—तुमने उससे बातें कीं ?

काशी—बातें करने का अवसर तो नहीं मिला । हाँ, उसे देखा अच्छी तरह से है । वह बहुत कम बोलती है, ऐसा मैंने सुना है; अंजुमन कहती थी ।

आबाजी—वह सर्वगुण सम्पन्ना है । मैंने अंजुमन को उसकी सेवा में नियुक्त कर दिया है । उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो ।

काशी—यह तो ठीक किया । किन्तु उसे आपने बन्दी कैसे किया ?

आबाजी—[हँसकर] बीजापुर के खजाने पर अधिकार कर चुकने के बाद मैंने अश्वारोहियों को आज्ञा दी कि वे सूबेदार का महल घेर लें । एक सिपाही ने मुझे सूचना दी कि सूबेदार मुल्ला अहमद भाग निकला है और उसके पीछे उसके विश्वस्त सेवकों के साथ उसका हरम है । मैंने खजाने पर कड़ा पहरा डालकर कुछ सैनिकों के साथ मुल्ला अहमद का पीछा किया । आगे बढ़ने पर हरम की डोलियाँ दीख पड़ीं । जब मुल्ला अहमद के सिपाहियों को हम लोगों ने देखा तो कुछ तो भाग निकले और कुछ डोलियों की रक्षा में खड़े हो गये । हम लोगों ने उन्हें एक ही धावे में समाप्त कर दिया । मैंने अन्य स्त्रियों की ओर देखा भी नहीं, गौहरबानू को बन्दी करने की आज्ञा देकर लौट आया ।

काशी—गौहरबानू को उसके घरवालों से छीन लेने में बड़ी निष्ठुरता है, भाई ।

आबाजी—तुम स्त्री हो इसलिए ऐसा कहती हो । ये तो राजनीतिक मामले हैं ।

काशी—गौहरबानू को आप मुक्त नहीं कर सकते ?

आबाजी—नहीं, मुक्त करने के लिए उसे बन्दी नहीं बनाया गया ।

काशी—तो अब मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए कि आपने उसे बन्दी क्यों बनाया है ?

आबाजी—इस प्रश्न का उत्तर मैं तुम्हें नहीं दे सकता।

काशी—मैं स्वयं इस प्रश्न का उत्तर दूँ ?

आबाजी—क्या ?

काशी—उस उत्तर का प्रश्न बनाकर कहूँ ?

आबाजी—कह सकती हो।

काशी—मैं उसे अपनी भाभी पुकार सकती हूँ ?

आबाजी—[तीक्ष्णता से] काशी कैसी बातें करती है ! क्या तू अपने भाई को नहीं जानती ?

काशी—[डरकर] जानती हूँ, जानती हूँ, फिर ······फिर गौहर-बानू का क्या होगा ?

आबाजी—तू राजनीति नहीं जानती, काशी ! अभी दो चार बसंतों को और बीत जाने दे तब तू राजनीति की बातों को समझ सकेगी ?

काशी—मैं राजनीति की बातें नहीं समझना चाहती; किन्तु नारी के अपमान को समझती हूँ। मुझे बानू का बन्दी होना अच्छा नहीं लगा। [मुख फेर लेती है।]

आबाजी—इसमें नारी का क्या अपमान हुआ ? अपने अन्तःपुर के शिविर में उसे सुख की कितनी सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। पथ में सुगंधित फूल, स्नान में गुलाबजल, भोजन में स्वादिष्ट व्यंजन, सेवा में अंजुमन जैसी कुशल परिचारिका।

काशी—भाई, स्त्री का सुख इन सब सुविधाओं में नहीं है।

आबाजी—वह मैं जानता हूँ, काशी ! लेकिन मैं राजनीति की एक कुशल चाल खेलना चाहता हूँ। मैं गौहरबानू का ऐसा उपयोग

करूँगा कि राजनीति भी मुझसे पराजित हो जाय।

काशी—क्या आप बीजापुर को सदैव के लिए झुकाना चाहते हैं?

आबाजी—मैं यदि तुम्हें सब बातें बतला दूँ तो राजनीति और साधारण वार्तालाप में अन्तर ही क्या रहा।

काशी—मैं स्वयं आपकी ऐसी राजनीति नहीं सुनना चाहती। [उदासीन मुख मुद्रा]

आबाजी—[मनाते हुए] रुष्ट हो गई, काशी! इस समारोह के अवसर पर तुम्हारा रुष्ट हो जाना मेरी सारी प्रसन्नता का नष्ट कर देगा। एक छोटी सी बात पर तुम अपने भाई के सारे परिश्रम को धूल में मिलाना चाहती हो काशी, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम मुस्कराओ।

काशी—मैं नहीं मुस्कराऊँगी।

आबाजी—न सही।

[**किन्तु इसी समय दोनों की दृष्टि परस्पर मिलने पर दोनों ही हँस पड़ते हैं**]

आबाजी—अच्छा काशी, गौहरबानू कहाँ है?

काशी—स्नान कर रही है।

आबाजी—तो तुमने उसके लिए सुगन्धित फूलों की मालाएँ तो तैयार कराई ही हैं। आज उसका अच्छे से अच्छा शृंगार होना चाहिए। ज्ञात हो कि वह वन की अनुपम देवी है! और काशी, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि मेरी ओर से गौहर के प्रति कोई अन्याय न होगा।

काशी—अंततः आप मेरे ही भाई हैं। ऐसा क्यों न कहेंगे! अब मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

आबाजी—तो फिर गौहरबानू से कुछ बातें कर लो और उसके शृंगार की व्यवस्था भी कर लो।

काशी—मैंने अंजुमन से कह दिया है कि जैसे ही वह स्नान कर ले उसका फूलों से शृंगार हो। उसे अन्तिम माला पहिनाने के लिए मैंने स्वयं गङ्गा से एक अच्छी माला गुँथवाई है। देखिए, वह सिंहासन पर है।

आबाजी—[माला देखकर] बहुत सुन्दर है। और तुम भी बहुत बुद्धिमती हो। अच्छा तो अब चलूँगा। श्रीमंत के आने में अब अधिक देर नहीं है। मैं इस बीच में थोड़ा निरीक्षण और कर लूँ। गौहरबानू का उत्तरदायित्व अब तुम्हारे ऊपर है। अपने भाई के सम्मान की रक्षा करना।

काशी—अच्छी बात है, आप जाइए।

आबाजी—गौहर के शृङ्गार में भी शीघ्रता करना। [प्रस्थान]

काशी—[आबाजी के चले जाने पर] गौहर के शृङ्गार में भी शीघ्रता करना....भाई की राजनीति समझ में नहीं आती, [पुकारकर] गंगा!

गंगा—[प्रवेश कर] आज्ञा।

काशी—गौहरबानू के स्नान हुए?

गंगा—जी, स्नान कर चुकीं।

काशी—अंजुमन ने उनका शृङ्गार किया?

गंगा—अंजुमन ने उनका शृंगार करने की चेष्टा की, किन्तु गौहरबानू ने अपना शृंगार नहीं कराया।

काशी—क्यों! क्या बहुत दुखी है?

गंगा—जी, अंजुमन ने बहुत समझाया, किन्तु गौहरबानू ने अपना शृंगार नहीं कराया।

काशी—मैंने अंजुमन से कहा था कि शृङ्गार के बाद वह गौहरबानू को मेरे सामने लाए। मैं उससे बातें करना चाहूँगी।

गंगा—मैं अभी जाकर देखती हूँ।

काशी—देखो। [गंगा का प्रस्थान]

काशी—[सोचती हुई] गौहर श्रृंगार करना नहीं चाहती......क्यों करे? फूल माला में कैद रहकर मुरझाने लगता है [टहलती हुई सिंहासन के समीप आती है और धीरे से माला उठाती है।] इसका प्रत्येक फूल गौहरबानू की तरह है बन्द......कैदी ...[माला तोड़ डालती है।] मैं उन्हें मुक्ति देती हूँ.........ओह! यदि मैं गौहर को भी मुक्त कर सकती!.........[गंगा का प्रवेश]

गंगा—देवि, गौहरबानू को लेकर अंजुमन इस ओर आने की आज्ञा चाहती है।

काशी—आने दो।

गंगा—[टूटी हुई माला को देखकर] देवी, यह माला.........

काशी—[लापरवाही से] हाँ. इसमें झुमका नहीं लग सका, तो मैंने इसे तोड़ दिया। बिना झुमके के माला ठीक नहीं है। जाओ तुम......

[गंगा का प्रस्थान; काशी टहलते हुए] क्या इसीलिए इस श्रृङ्गार की माला में झुमका नहीं लग रहा था? माला में झुमका नहीं, गौरहबानू में सुख और सौभाग्य नहीं।

[अंजुमन का प्रवेश]

अंजुमन—[प्रणाम कर] देवी, गौहरबानू इधर आ गई हैं।

काशी—अंजुमन, गौहरबानू इधर आ गई हैं! तो उन्हें यहाँ ले आओ।

अंजुमन—जो आज्ञा [प्रस्थान]

काशी—भाई आबाजी की राजनीति, स्त्रियों की स्वतंत्रता से

खिलवाड़ करनेवाली राजनीति, इसका अन्त् कहाँ जाकर होगा ! मुल्ला अहमद की परतन्त्रता में या श्रीमन्त भोसले शिवाजी की स्वतंत्रता में······ ?

[गौहरबानू (आयु १८ वर्ष) का धीरे-धीरे प्रवेश, जैसे चन्द्र बादलों में से निकल रहा है। नीले रेशम की सलवार और प्याजी रङ्ग की ओढ़नी, गले में गुलाबी रङ्ग का दुपट्टा, पैर में जरी की जूतियाँ, मुख पर घूँघट, दुबला पतला शरीर जैसे पुष्परहित लता हो, गौर वर्ण और शरीर का समस्त आकर्षण। पीछे अंजुमन है।]

काशी—[आगे बढ़कर] आओ गौहरबानू।

[गौहरबानू दो कदम आगे बढ़ती है।]

काशी—बानू, महाराष्ट्र में स्त्रियाँ घूँघट नहीं डालतीं। लाओ, मैं तुम्हारा मुख खोल दूँ।

[काशी गौहर का घूँघट उलट देती है। गौहरबानू का सुन्दर मुख दीख पड़ता है। अत्यन्त सुन्दर विशाल नेत्र, नासिका उठी हुई, पतले ओंठ, कपालों में सौंदर्य कूप, केशों में केवल एक मुक्ता माला, नाक में मोती की छोटी सी बेसर, जो ओठों पर झूल रही है जैसे संध्याकाल में एक तारा जगमगा रहा है। सारे शरीर में लज्जा और संकोच, मुख पर उदासी छा रही है। घूँघट उलटते ही उसके नेत्र से दो आँसू ढुलक जाते हैं, जैसे स्मृतियाँ तरल होकर नेत्रों से बह गई हों।]

काशी—[सहृदयता से] आह आँसू !··················बानू, तुम्हारी आँखों में आँसू ! इन आँसुओं से तुम्हारी सुन्दरता धुलेगी नहीं और भी मैली हो जायगी······[रुककर अंजुमन से] गौहरबानू को कुछ कष्ट तो नहीं हुआ ?

अंजुमन—[नत होकर] नहीं देवी, मैंने इनकी इच्छानुसार ही

काम किया है। आपकी आज्ञा से मैं इनका शृङ्गार करना चाहती थी। इन्होंने मुझे रोक दिया, मैंने इनका शृङ्गार नहीं किया। मेरा तो कोई अपराध......!

काशी—अच्छा, तो तुम जाओ।

अंजुमन—जो आज्ञा। [सिर झुकाकर प्रस्थान]

काशी—[गौहर की ओर देखकर, उद्विग्नता से] तुम्हें उदास नहीं रहना चाहिये, बानू! [बानू कुछ उत्तर नहीं देती।]

काशी—[अस्थिरता से] मुझे यह अच्छा नहीं लगता मैं भी स्त्री हूँ, बानू! तुम्हारे आँसुओं से मुझे दुःख होता है। चाहे तुम शत्रु पक्ष ही की क्यों न हो, किन्तु जातीय सहानुभूति तो मेरे हृदय से नहीं जा सकती। तुम्हारे आँसू मुझे दुःख पहुँचाते हैं।

[बानू की आँखों से अधिक वेग से आँसू निकलने लगते हैं। वह गुलाबी दुपट्टे में अपना मुख छिपा लेती है। काशी उसके निकट चली जाती है।]

काशी—[सांत्वना के स्वरों में] बानू! तुम्हें धैर्य रखना चाहिए। नारी की मर्यादा रोने में नहीं है, दृढ़ता से दुःख को सुख बनाने में है। हमारे इतिहास में इसके अनेक उदाहरण हैं, हम लोगों ने अपना बलिदान कर दिया है, किन्तु आँखों में आँसू नहीं आने दिये। तुम्हारे आँसू देखकर मुझे लज्जा और क्लेश दोनों ही होते हैं। बोलो बानू, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकती हूँ? [बानू फिर भी मौन रहती है।]

काशी—[सोचते हुए] आँसू... बीजापुर के सूबेदार मुल्ला अहमद बड़ी कठिनता से कुछ मोती इकट्ठे करें और उनकी पुत्रवधू गौरबानू उन्हें आँखों से बेमोल लुटा दे [बानू की ओर आग्रह से देखकर] बानू, ये आँखें बहुत कीमती हैं, इन आँसुओं से किसी भी

सल्तनत की नींव बह सकती है, और तुम इन्हें यों ही गिरा रही हो जैसे इस सह्याद्रि की चोटी पर ओस गिरा करती है। [रुककर] इधर देखो। [खिड़की की ओर संकेत करते हुए] कितना सुन्दर दृश्य है। ये लताएँ चाँदनी में डूब गई हैं जैसे सारा वनप्रांत निर्मल जल से भरा हुआ एक हम्माम है और ये लताएँ हमारी-तुम्हारी तरह स्नान कर रही हैं। [बानू फिर भी मौन है।]

काशी—[उँगली से संकेत करते हुए] और उधर देखो, वह तारिका तुम्हारी तरह अकेली खड़ी है लेकिन वह उदास नहीं है, हँस रही है। [बानू अब भी मौन है।]

काशी—तुम्हें ठंड तो नहीं लग रही है? आओ, अग्निपात्र के समीप आ जाओ।

[बानू को अग्निपात्र के समीप लाती है। उसके वस्त्र ठीक करती है।]

काशी—बानू, तुम बोलती क्यों नहीं? मैं तुमसे इतनी बातें कर रही हूँ और तुम चुप हो? मैं तुमसे सहानुभूति रखती हूँ, मेरा नाम काशी है, मैं बहिन, महाराष्ट्र सेनापति आबाजी सोनदेव की......।

बानू—[चौंककर, अस्फुट शब्दों में] आबा......जी......।

काशी—[प्रसन्न होकर] हाँ, हाँ, महाराष्ट्र सेनापति आबाजी सोनदेव, वीर, साहसी, पराक्रमी। उन्होंने ही आज तुम्हें फूलों से सजाने......[रुककर] तुमने फूल मालाएँ नहीं पहनीं?

बानू—फूल-मालाओं से हथकड़ियाँ मुझे ज्यादा अच्छी मालूम देतीं देवी!

काशी—[मुस्कराकर] ये हाथ और हथकड़ियाँ......बानू! इन हाथों में पड़कर लोहा भी सोना हो जाता। चाँदनी को भी कोई

अँधेरे की कड़ियों से बाँध सकता है ? चाँद भी कभी अँधेरे बादलों में बाँधा गया है !

बानू—[गहरी साँस लेकर] मेरे दर्द को अफसाना न बनाओ देवी ! एक गिरे हुए महल की ईंट को ठोकर मारना ठीक नहीं है। मुझे मेरे घर के लोगों से जुदा कर तुम लोगों ने क्या पाया ? खुदा की खिलकत में क्या औरत इतनी गई-बीती चीज हो गई कि वह पत्थरों और कंकड़ों की भाँति लूट ली जाय ? बेजान चीजों के साथ इन्सान को बाँध लेना जिन्दगी की सब से बड़ी तौहीन नहीं है ?

काशी—[उसी स्वर में] सबसे बड़ी, लेकिन बेजान चीजों की कीमत कम नहीं है। कभी-कभी तो जानदार चीजों से भी अधिक। जब बेजान बिजली गिरती है तो इन्सान भी जलकर खाक हो जाता है। जब बेजान पानी बढ़ आता है तो वह सैकड़ों इन्सानों को बहाकर ले जाता है। बेजान और इन्सान में अन्तर यही है कि बेजान को कोई दोष नहीं लगा सकता और इन्सान को लोग दोष लगा सकते हैं। काम दोनों का एक ही सा है लेकिन इसके माने यह नहीं है कि मैं बेजान चीजों के साथ तुम्हें रख रही हूँ। हजारों गौहर एक गौहर-बानू के मुकाबिले में कुछ भी नहीं हैं।

बानू—इसका तुम्हें क्या जवाब दूँ, देवी, लेकिन सोचो मैं कितने बड़े घर में पैदा हुई और कितने बड़े घर में गई। अपने बाप के घर में इशरत से सोई और शौहर के घर में जागी। लेकिन जागकर भी मैंने सुनहले सपने देखे, आबेहयात से सिंचे हुए और मोतियों से सँवारे हुए। चार दिन भी न हुए थे कि सुना कल्याण पर मराठों की घटा छा गई। श्रीमंत शिवाजी का नाम सैकड़ों बार सुना। उनकी बलन्दखयाली की तारीफ़ सुनी लेकिन क्या वह क़हर मेरे ही सिर पर गिरना था ?

काशी—भाग्य की बात।

बानू—आबाजी सोनदेव ने हम लोगों का पीछा किया। मराठों का एक दस्ता उनके साथ था [काँपकर] ओह, मराठे! रात के डरावने सपने हैं। तलवार लेकर टूट पड़ते हैं; जैसे आँधी के हाथ में बिजली हो। हमारे सिपाहियों में और मराठों में जंग छिड़ गई। आबाजी ने हमारे सिपाहियों को परास्त कर मुझे कैद करने का हुक्म दिया और दूसरी सिम्त चले गये। ओह, मैं दो रोज़ में अपनी माँ के पास जानेवाली थी।

काशी—[सोचते हुए] हुआ तो बहुत बुरा।

बानू—[करुण स्वर में] मेरी माँ बीमार है। सुना है, हर रोज़ सूरज निकलने पर वे मेरे आने के रास्ते पर आँखें बिछाये लेटी रहती हैं। खाना आता है तो यह कहकर लौटा देती हैं कि बानू आकर खिलाएगी तो बीमारी में दुबारा कैसे खा सकूँगी। ओफ......मेरी माँ [कपड़ों से मुँह छिपा लेती है।]

काशी—[सान्त्वना देते हुए] बानू, इन बातों से अपनी तबियत मत खराब करो। श्रीमंत अवश्य तुम्हारी हालत पर ध्यान देंगे।

बानू—मुझे इसका भरोसा है, देवी। तभी तो मैं अपने दर्द को इस तरह दबाए हूँ। लेकिन मैं समझती थी कि मराठों के पास भी औरत की कीमत है। वे उसकी अस्मत को ईश्वर की सुन्दरता समझते हैं। लेकिन आबाजी सोन......देव......।

काशी—बानू, आबाजी सोनदेव को बुरा क्यों कहती हो? आपस की इस लड़ाई को बुरा क्यों नहीं कहती जिसने हिन्दू और मुसलमानों को आपस में लड़ा दिया है। दक्खिन में औरंगजेब की नीति को बुरा क्यों नहीं कहती, जिसने हिन्दुओं और मुसलमानों में भेद का बीज बो

दिया है, दोनों को तलवार और ढाल की तरह लड़ा दिया है।

बानू—वाक़ई यह बहुत बुरा है, लेकिन न तलवार टूट सकती है और न ढाल कट सकती है।

काशी—दोनों ही न कटें, दोनों ही न टूटें, लेकिन वे दोनों चाँद और सूरज की तरह तो चमक सकते हैं। अगर मैं इस समय शाहंशाह की जगह दिल्ली की सुलताना होती तो कहती [आगे बढ़कर गौरवपूर्ण स्वर में] "हिंदुओ और मुसलमानो, तुम हिंदुस्तान में न्याय की तराजू के दो पलड़े हो, एक दूसरे को सँभाले रहो। इस तरह सधे रहो कि किसी के साथ किसी तरह का पक्षपात न हो। दोनों एक ही गीत के स्थायी और अन्तरा हो। इस तरह स्वर खींचो कि बेताल न हो सको। साँस के खींचने और छोड़ने की तरह तुम दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हो, जिन्दगी में कभी न रुकनेवाले हमेशा साथ ही साथ चलने और रहनेवाले ऐसे ही तुम दोनों हो।" [बानू से] क्यों बानू ?

बानू—आप ठीक कहती हैं, देवी! लेकिन दिल्ली की यह किस्मत नहीं हो सकी कि आप सुलताना हों।

काशी—तभी यह सब कुछ हो रहा है। मैंने अपनी परिस्थितियों पर विचार किया है। और मुसलमानों की हालत पर ग़ौर किया है।

बानू—[सोचकर] मैं एक बात कहूँ, देवी ?

काशी—अवश्य।

बानू—आप मुझे आज़ाद नहीं करा सकतीं, देवी ?

काशी—मुझे बहुत प्रसन्नता होती यदि मैं ऐसा कर सकती। लेकिन बानू मैं ऐसा नहीं कर सकती।

बानू—आप आबाजी की बहिन हैं, देवी! बहिन होकर इतना भी नहीं कर सकती ?

काशी—यदि कर सकती तो तुम्हें इतना कहने की आवश्यकता भी नहीं होती। बानू, तुम नहीं जानती कि मैं तुम्हारे कैद हो जाने से अपने भाई से सन्तुष्ट नहीं हूँ। किन्तु भाई की आज्ञा के बाहर भी तो नहीं जा सकती। फिर भाई ने तुम्हें किस लिए कैद किया है यह भी नहीं जानती।

बानू—मैं जानती हूँ। खूबसूरत होना दुनिया की सबसे बड़ा गुनाह है।

काशी—और इसकी सजा क्या है।

बानू—बदसूरत कर दिया जाना।

काशी—तुम ठीक कहती हो, बानू। फिर भी आबाजी की आज्ञा टालने में मैं असमर्थ हूँ।

बानू—अपने को इतना कमज़ोर समझती हैं आप?

काशी—कमज़ोर नहीं समझती, लेकिन परिवार और समाज की मर्यादा तोड़ी नहीं जा सकती और फिर यह तो राजनीति की बात है। राजनीति पुरुषों के हाथ में सौंप देना बुरा नहीं।

बानू—और अगर मेरी तरह कोई आपको भी कैद कर ले?

काशी—[लापरवाही से] तो मैं भी कैद हो जाऊँगी। मैं भी चली जाऊँगी। लेकिन मेरी ओर कोई देख नहीं सकता। देखती हो, [कटार निकालती है] यह अमर-जीवन देने वाली [गौहरबानू की ओर देखती है] अच्छा! तुम्हारे पास भी है! [बानू की कमर में लटकती हुई कटार की ओर संकेत करती है।]

बानू—है तो, लेकिन चाहते हुए भी मैंने खुदकुशी नहीं की। मुझे कौन रोक सकता था? लेकिन मैंने सुना है कि श्रीमंत शिवाजी बहुत बहादुर हैं। उनके दर्शन करना चाहती हूँ और चाहती हूँ कि

उनके सामने खुदकुशी करूँ।

काशी—तो क्या तुम श्रीमंत शिवाजी के सामने खुदकुशी करोगी?

बानू—ज़रूर। अगर श्रीमंत शिवाजी ने मेरे साथ अच्छा बरताव नहीं किया तो उनके साथ लड़ूँगी। वे तो बहुत ताकतवर हैं, मैं उन पर क्या वार करूँगी खुद ही मरूँगी। देखूँगी कि मेरे कलेजे में छुरी चुभने पर एक बहादुर के दिल पर क्या असर होता है!

काशी—अच्छा बानू, तो तुम बहादुर भी हो!

बानू—क्यों? क्या मैं कटार नहीं चला सकती? कैद होने से पहले मैंने दो सिपाहियों को मौत के घाट उतारा था।

काशी—तो दो सिपाहियों को आप मार भी चुकी हैं?

बानू—[कटार निकालती हुई] अभी शायद इस पर खून के दाग होंगे भी [देखकर] अभी तक दाग हैं, जैसे मराठों के तेज का सूरज मेरे खंजर में डूब रहा है।

काशी—या मराठों के तेज का सूरज उदय हो रहा है। लाली दोनों में बराबर है। [सोचते हुए] ओह, तुम बड़ी बहादुर हो। जो लोग कहते हैं कि स्त्रियाँ कमज़ोर होती हैं वे भूल करते हैं। बानू जैसी देवियों के दर्शन करें। बानू, तुमसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मुझे मालूम हुआ कि आँसुओं के पीछे एक खंजर भी छिपा हुआ था। मेरा ध्यान उस पर अभी तक नहीं गया था।

बानू—इस कुसूर की माफी चाहती हूँ।

काशी—कुसूर मेरा है या आपका? खैर, इन बातों पर मैं अधिक ध्यान नहीं देती। आप भूल जाइये कि आप कैद में हैं। मेरे साथ रहिए, मेरी बहिन की तरह। कोई आपकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकता।

बानू—आपसे मुझे ऐसी ही उम्मीद है देवी!

काशी—देखिए, यह चन्द्रकला काले पहाड़ से इस तरह निकलती है जैसे काले म्यान से खंजर। देखूँ तुम्हारा खंजर! [**काशी पास जाकर कटार ले लेती है**] जिस तरह चाँदनी में चन्द्रकला दीख पड़ती है उसी तरह गौहरबानू के हाथ में यह खंजर। बहुत अच्छा खंजर है, बानू। इतनी चमक इसमें कहाँ से आई! [**बानू कुछ उत्तर नहीं देती**]

काशी—बानू, मुझे माफ करना। यह खंजर मुझे आपसे छीन लेना पड़ा। [**खंजर को देखती है।**] आप जैसी सुख-दुःख की मानने-वाली स्त्रियों के हाथ में खंजर रहना खतरे से खाली नहीं है। आबाजी ने कहा है कि आपकी जिम्मेदारी मुझ पर है।

बानू—स्त्री होकर आप ने मुझे धोखा दिया है, देवी।

काशी—बानू, तुम ऐसा क्यों सोचती हो? मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकती, लेकिन बानू मैं यह नहीं चाहती कि भूल से भी तुमसे खुद-कुशी हो जाय। मैं तुम्हें प्यार करने लगी हूँ। क्या यह ठीक है कि एक बहिन अपनी दूसरी बहिन के हाथ में खंजर इसलिए रहने दे कि वह दुःख से पागल होकर आत्म-हत्या कर ले? मैं समझती हूँ कि बहुत बड़ी भूल करूँगी यदि तुम्हारी इस हालत में तुम्हें मृत्यु की इस दूती के साथ छोड़ दूँ। यह जहर का काँटा असावधानी से शरीर में चुभ सकता है।

बानू—लेकिन देवी, मेरे पास जहर का एक काँटा और भी है। [**कंचुकी से दूसरी कटार निकलती है**]

काशी—मैं जानती थी बानू, इसीलिए मैंने यह बात कही। हम लोग भी इसी तरह जहर के काँटों को अपने जिस्म में छिपाए रहती हैं।

[अपनी कंचुकी से एक कटार निकालती है ।] देखिए, लेकिन यह काँटा दूसरों के बदन में चुभाने के लिए है और सीने पर, पीठ पर नहीं । [रुककर] हाँ, तुमने तो दो सिपाहियों को कत्ल भी कर दिया है ।

बानू—हाँ, हसरत रह गई कि औरों को कत्ल नहीं कर सकी । लेकिन एक मराठा सिपाही बेकसूर मारा गया । वह मुझे बचाने आया, लेकिन धोखे से मैंने उसपर वार कर ही दिया, बेचारा यादव रामचंद्र ।

काशी—[चौंककर] यादव ....रामचन्द्र !

बानू—हाँ, यादव रामचन्द्र ! क्यों ! चौंक क्यों पड़ी ?

काशी—ओह, सोना का भाई, यादव ....रामचन्द्र....... ।

बानू—यह सोना कौन ?

काशी—आप नहीं जानतीं, यह मेरी सहचरी है । बेचारी बहुत दुखी है अपने भाई के न लौट सकने के कारण ।

बानू—मुझे अजहद रज है देवी ! मुझमें बहुत बड़ी गलती हुई है ।

काशी—लेकिन तुम उसका नाम कैसे जानती हो, बानू ?

बानू—उसके साथियों ने उसे यादव रामचन्द्र के नाम से पुकार कर ललकारा था । क्या वह कोई खास सिपाही था ?

काशी—बहुत खास ! वह तुम्हें बचाने आया और तुमने उसे मार डाला !

बानू—धोखा हुआ देवी ।

काशी—आश्चर्य है, एक स्त्री ने असहाय होकर भी एक वीर सिपाही को मार डाला ।

बानू—वह सिपाही असावधान था । वह क्या जानता था कि उस पर वार किया जायगा ?

काशी—कैसा हाथ था वह आपका, मुझे दिखला सकती हो ?

बानू—मुझे अधिक लज्जित न करो।

काशी—लज्जित करने की बात नहीं है। मैं तुम्हारा वह हाथ देखना चाहती थी।

बानू—उसे तुम अपनी कटार पर रोक सकोगी?

काशी—हाँ, हाँ, तैयार हूँ। [अपनी कटार सम्हालती है। बानू शून्य में कटार तानती है। और प्रहार करती है। काशी उसे अपनी कटार पर रोकती है। इतने में ही आबाजी सोनदेव की जयध्वनि। दोनों अपने को सम्हालने की चेष्टा करती हैं, दूसरे ही क्षण आबाजी सोनदेव का प्रवेश।]

आबाजी—[आश्चर्य से ठिठककर] यह क्या... ...काशी? [बानू को देखकर] गौहरबानू...... !

[बानू अपने सिर पर वस्त्र सरका लेती है]

आबाजी—काशी, तुम इस शिविर को ही क्या रणभूमि बना रही हो? शिष्टता सीखो। मेहमान का स्वागत करो। श्रीमंत शिवाजी आने वाले हैं।

काशी—[हँसकर] भाई, यह सचमुच का युद्ध नहीं। मैं बानू का वह हाथ देख रही थी जो इन्होंने यादव रामचन्द्र को मारने में दिखलाया था।

आबाजी—हाँ, मुझे अभी सूचना मिली कि यादव रामचन्द्र स्वयं गौहरबानू की कटार से मारा गया।

काशी—और वह कटार इनके पास अभी तक है।

आबाजी—मैं उस कटार को चाहता हूँ। श्रीमंत अब आने ही वाले हैं मुझे उनके सामने शस्त्रों का प्रदर्शन करना है। वे शस्त्र-पूजन करेंगे। [काशी से] काशी, तुम मुझे अपनी कटार दे सकती हो।

काशी—[प्रसन्नता से] यह मेरी और यह गौहरबानू की। [दोनों कटारें देती है।]

आबाजी—[कटारें लेते हुए] क्या इनके अतिरिक्त गौहरबानू के पास और भी कटार है ?

काशी—हाँ भाई, एक छोटी कटार और भी है।

आबाजी—वह मुझे मिल सकेगी ? बानू, वह कटार भी मैं चाहता हूँ। अब तो आपको उसकी कोई आवश्यकता नहीं। आपकी रक्षा करनेवाला यादव रामचन्द्र मर ही गया। श्रीमंत शिवाजी उसका क्या निर्णय करते हैं यह तो स्वयं श्रीमंत जानें किन्तु आपने तो उसका निर्णय कर ही दिया। सम्भव है, शत्रु पक्ष की रक्षा करने के कारण श्रीमंत भी उसे दंडित करते। अब शायद सोना को दण्ड भुगतना पड़े। अच्छा जो हो, तो फिर वह कटार मुझे मिल सकेगी ? [बानू मौन है।]

काशी—कटार आपको मिल सकती है, किन्तु बानू के सम्मान पर किसी प्रकार की आँच नहीं आनी चाहिए।

आबाजी—नहीं आयेगी ?

काशी—और भाई, मैं यह बतला देना चाहती हूँ कि गौहरबानू का अपमान मेरा अपमान होगा।

आबाजी—वाह कुछ क्षणों के मेल मिलाप में ही यह नाता जुड़ गया।

काशी—सच्चे हृदयों के मिलने में देर नहीं लगती।

आबाजी—ठीक है, तब उनके और तुम्हारे सम्मान पर कोई आँच नहीं आएगी, मैं बचन देता हूँ।

काशी—[बानू से] बानू, अब अपनी कटार देने में क्या आपत्ति है ? [बानू फिर भी मौन है।]

आबाजी—[आगे बढ़कर] गौहरबानू, मैं आपके सम्मान की रक्षा करूँगा। मैं वचन देता हूँ कि मैं आपके सम्मान को बढ़ाऊँगा और अपनी ओर से मैं आपको विश्वस दिलाना चाहता हूँ कि मैं आपका स्पर्श भी नहीं करूँगा।

[बानू फिर भी चुप रहती है।]

आबाजी—गौहरबानू, अगर मैं चाहूँ तो आपसे कटार छीन सकता हूँ। आप इस वक्त मेरी कैद में हैं, लेकिन महाराष्ट्र के लोग स्त्रियों की इज्जत करते हैं। वे आपके शरीर को हाथ भी लगाना नहीं चाहते। फिर आप किस बात से डरती हैं? [टहलते हुए] आखिर आप अपने साथ कटार क्यों रखना चाहती हैं? क्या, मुझ पर या शिवाजी पर वार करेंगी? अगर पीछे से वार करेंगी तो आपकी इज्जत नहीं बढ़ सकती और अगर सामने से वार करना चाहेंगी तो आपके हाथ में कटार दे दी जायगी। लेकिन ऐसा कोई मौका आपके सामने नहीं आएगा। हम लोग स्त्रियों की इज्जत करते हैं। आपको कैद करने में आपके अपमान की भावना मेरे सामने नहीं है। जो कुछ भी होगा आपकी स्वीकृति से होगा। आपको अब भी अपनी कटार देने में कोई आपत्ति है?

काशी—बानू, अब तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

[बानू फिर भी अचल और मौन है।]

आबाजी—देखिए गौहरबानू, मैं श्रीमंत के शस्त्र-पूजन की व्यवस्था करने जा रहा हूँ। इस शिविर का प्रत्येक शस्त्र उनके हाथों से आज पूजित होना चाहिए। मैं आपसे थोड़ी देर के लिए आपकी कटार माँगता हूँ। मैं आपके सामने भवानी की शपथ लेकर कहता हूँ कि आपके सम्मान की रक्षा होगी। मैं श्रीमंत शिवाजी का पूजन-

विधान के नाते आपसे आपकी कटार चाहता हूँ।

[बानू अपनी कटार जमीन पर गिरा देती है।]

काशी—[प्रसन्नता से] गौहर वास्तव में गौहर है। [कटार उठाकर आबाजी को देती है।]

आबाजी—[बढ़कर कटार लेते हुए] धन्यवाद, गौहरबानू। आप सचमुच ही एक आदर्श रमणी हैं, देवी हैं। मुख की सुन्दरता के साथ ही साथ आपके पास हृदय की सुन्दरता भी है। [कटार को देखते हुए] यह कटार……[कटार को हाथ से ऊपर उठाते हुए] तू बानू जैसी वीर रमणी के हाथों में रही, तू धन्य है। अब तू श्रीमंत शिवाजी के हाथों में जा। मृत्यु के दाँत की तरह टेढ़ी होकर भी तू हृदय से लगाने योग्य है। [गौहरबानू से] गौहरबानू, आपको एक बार फिर धन्यवाद। अब आप जा सकती हैं। [पुकारकर] अंजुमन!

[अंजुमन का प्रवेश। वह आकर प्रणाम करती है।]

आबाजी—अंजुमन! गौहरबानू अपने खेमे में जाना चाहती हैं। इन्हें कोई कष्ट न हो।

अंजुमन—जो आज्ञा। [गौहरबानू से] चलिए।

[अंजुमन के साथ गौहरबानू का प्रस्थान]

आबाजी—[गौहरबानू को देखते हुए] श्रीमंत शिवाजी के नाम पर इन्होंने कटार दी।

काशी—श्रीमंत शिवाजी के प्रति गौहर के हृदय में बड़ी श्रद्धा है। कह रही थीं कि वह श्रीमंत के दर्शन करना चाहती है।

आबाजी—फिर मैं उनकी इच्छा पूरी करूँगा।

काशी—किन्तु भाई, आपने एक भारी भूल की थी।

आबाजी—मैंने! कौनसी?

काशी—आपने गौहरबानू के पास एक नहीं दो दो कटारें रहने दीं। यदि वे अपने दुःख में आत्म-हत्या कर बैठतीं तो आपकी राजनीति अधूरी रह जाती। मैं आपके आने तक उन्हें बातों ही में उलझाए रखना चाहती थी। मैं नहीं चाहती थी कि इतनी अच्छी स्त्री आत्म-हत्या करे।

आबाजी—मैं तुम्हारी बुद्धिमत्ता से प्रसन्न हूँ, लेकिन तुम शायद यह नहीं जानतीं कि अंजुमन को मैंने गौहरबानू की सेवा में क्यों रक्खा था। उसे मेरा पूरा आदेश है कि वह गौहरबानू की सेवा करते हुए भी उन्हें कभी अपनी कटार का उपयोग न करने दे। अंजुमन छाया की भाँति गौहर के पीछे है। अंजुमन के बाद मैंने तुम पर सारा उत्तरदायित्व छोड़ दिया था। मुझे विश्वास था कि महाराष्ट्र की स्त्रियाँ अपना उत्तरदायित्व समझती हैं।

काशी—प्रशंसा के लिए धन्यवाद। किन्तु गौहरबानू ने मुझे वचन दिया है कि वे तब तक आत्महत्या नहीं करेंगी जब तक कि उनके साथ अच्छे व्यवहार में कमी नहीं आएगी। उनके सम्मान पर किसी तरह की आँच नहीं आनी चाहिए, भाई।

आबाजी—मैं इस सम्बन्ध में तुम्हें पूर्ण आश्वासन देना चाहता हूँ। [**कुछ ठहरकर**] अच्छा काशी, श्रीमंत शिवाजी अब आने ही वाले हैं। मोरोपंत पेशवा उनके साथ होंगे। वे कल्याण की विजय-लक्ष्मी का निरीक्षण करेंगे। मैंने जितने भी रत्न इस विजय में एकत्रित किए हैं उन्हें एक स्वर्ण-थाल में सजाओ और श्रीमंत के आने पर प्रस्तुत करो।

काशी—बहुत अच्छा। [**जाने को प्रस्तुत होती है**]

आबाजी—सुनो काशी, जब श्रीमंत इस शिविर में पदार्पण करें तो तुम्हें उनकी आरती उतारने के लिए तैयार रहना चाहिए।

काशी—और गौहरबानू की आरती कौन उतारेगा ?

आबाजी—तू मुझ पर व्यंग्य करती है, काशी !

काशी—फिर यह व्यवहार क्या है कि एक ओर तो भवानी की शपथ लेकर आपने उसे न छूने की प्रतिज्ञा की और दूसरी ओर उसकी कटार को माथे चढ़ा लिया ?

आबाजी—तेरे लिए राजनीति नहीं है, काशी। तू आरती की व्यवस्था कर।

काशी—बार-बार राजनीति का नाम लेकर आप मुझे मूर्ख बना देते हैं। अच्छी बात है, अब मैं महाराष्ट्र के योग्य ही नहीं हूँ। गौहर क्या आत्म-हत्या करेगी, मैं आत्म-हत्या करूँगी। करा लीजिएगा आप गौहर से ही आरती श्रीमंत शिवाजी की या अपनी········[बुरा मान जाती है।]

आबाजी—बुरा मान गई ? नहीं, काशी तू बहुत बुद्धिमती है। तुझे अपनी बहिन के रूप में पाकर मैं गौरवान्वित हुआ हूँ। अच्छा, सुन ले तू भी राजनीति। कोई यहाँ है तो नहीं ? [नेपथ्य की ओर देखकर] शरीर-रक्षक, तुम जाओ, इस समय तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।

बाहर से स्वर—जो आज्ञा [जाने की आवाज]

आबाजी—सुनो काशी, मैं तुम्हें अपनी राजनीति संक्षेप में समझा दूँ। किन्तु तुम किसी से कहोगी तो नहीं ?

काशी—[नकारात्मक सिर हिला देती है।]

आबाजी—वचन देती हो ?

काशी—हाँ।

आबाजी—मैं गौहरबानू को कल्याण-विजय की सब से बड़ी विजयश्री के रूप में श्रीमंत शिवाजी की सेवा में भेंट करना चाहता हूँ।

काशी—क्या आप श्रीमंत शिवाजी के चरित्र को जानते नहीं हैं ? क्या वे स्वीकार करेंगे ?

आबाजी—मुझे विश्वास है।

काशी—वे पर-स्त्री को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

आबाजी—मैं यह जानता हूँ कि गौहरबानू का सौन्दर्य किसी भी आदर्श के विरोध में खड़ा किया जा सकता है। मैं यह भी जानता हूँ कि श्रीमंत की आज्ञा स्त्रियों को कैद करने की नहीं है। किन्तु मैं एक ऐसा पाँसा फेंकना चाहता हूँ कि श्रीमंत गौहरबानू के सौन्दर्य पर मोहित हो जायँ और महाराष्ट्र में एक सुन्दरता की देवी आ जाय।

काशी—किन्तु भाई, इसका उद्देश्य क्या है ?

आबाजी—यह भी सुनना चाहती हो ! इस दैवी उपहार को पाकर श्रीमंत मुझसे बहुत प्रसन्न होंगे और इसके फलस्वरूप जानती हो क्या होगा ?

काशी—[**उत्सुकता से**] क्या होगा ?

आबाजी—आबाजी सोनदेव श्रीमंत शिवाजी भोंसले के पेशवा होंगे। मोरोपंत के स्थान पर समस्त महाराष्ट्र के पेशवा आबाजी सोनदेव !

काशी—मैं बहुत प्रसन्न होऊँगी, भाई। पेशवा की बहिन कहलाऊँगी, किन्तु मुझे इस कार्य में सन्देह है।

आबाजी—तुम अभी बालिका हो, क्या समझो इन बातों को। किन्तु यह रहस्य किसी पर प्रकट न होने पावे काशी !

काशी—फिर गौहरबानू के सम्मान की रक्षा ?

आबाजी—श्रीमंत सभी परिस्थितियों को सम्हाल लेंगे, मुझे आगे की चिंता नहीं है। गौहरबानू श्रीमंत पर श्रद्धा रखती है हाँ, आगे चलकर

यही श्रद्धा प्रेम का रूप ले सकती है। मुगल इतिहास में नूरजहाँ का उदाहरण तुम्हारे सामने है लेकिन यह सब होगा गौहरबानू की सम्मति से ही। हाँ, जब तक गौहरबानू श्रीमंत की सेवा में उपस्थित नहीं की जातीं तब तक उनके सम्मान की रक्षा का प्रश्न मेरा है और मैं वचन देता हूँ कि मेरे संरक्षण में उनके सम्मान की रक्षा अवश्य होगी। हाँ, एक बात और·········काशी, उसे तुम्हीं को पूरा करना है।

काशी—वह क्या ?

आबाजी—श्रीमंत के सामने जिस समय मैं "भवानी की जय" कहूँ उस समय तुम्हें गौहरबानू को द्वार तक पहुँचाना होगा।

काशी—जैसी महाराज पेशवा की आज्ञा।

आबाजी—[**किंचित् बनावटी क्रोध के साथ**] चुप काशी, अभी ऐसा कहने का समय नहीं है। यह रहस्य गुप्त रखना चाहिए, जब तक कि अभीष्ट सिद्धि न हो जावे।

[**काशी मौन स्वीकृति देती है।**]

आबाजी—अच्छा, तो अब तुम जाओ। आरती-पात्र सुसज्जित रहे, साथ ही स्वर्ण-थाल में चुने हुए रत्न भी। और देखो, गौहरबानू को भी तैयार रखना। अच्छा! अब तुम मीनाजी को मेरे पास भेजो। वे यहीं पास के शिविर में होंगे।

काशी—बहुत अच्छा। [**चलने के लिए उद्यत होती है।**]

आबाजी—देखो, शरीर-रक्षक से कहला दो कि वह द्वार पर अपना स्थान लें।

[**काशी सिर झुकाकर स्वीकार करती है और जाती है।**]

आबाजी—[**एक क्षण काशी के जाने की दिशा में देखते हैं फिर लौटकर टहलते हुए**] काशी को मैंने अपने महान् उद्देश्य की सूचना

दे दी। गुप्त तो रक्खेगी ही.........[दृढ़ता से सिर उठाकर] ठीक...
समस्त महाराष्ट्र के पेशवा हो जाने का गौरव......मेरा होगा.......
मोरोपंत के स्थान पर आबाजी सोनदेव......[फिर टहलते हुए] गौहर-
बानू......तू देवी है, तू मेरे गौरव शिखर की सोपान थी यह स्वयं
मुल्ला अहमद नहीं जानता होगा......महाराष्ट्र का भाग्य...
[टहलते हैं]

[मीनाजी का प्रवेश। साधारण सरदार जैसा वेश-विन्यास]

मीनाजी—[प्रणाम कर] आज्ञा श्रीमान् की ?

आबाजी—मीनाजी, श्रीमंत भोंसले के इस शिविर-कक्ष में आने में अब देर नहीं है। वे इस कक्ष में आने के बाद विजय-सामग्री का निरीक्षण करेंगे। तुमने विजय की समस्त सामग्रियों को सुसज्जित कर लिया ?

मीनाजी—आज्ञानुसार सब सामग्री प्रस्तुत है, श्रीमान्।

आबाजी—५५१ घोड़े अश्वारोहियों के निरीक्षण में हैं ?

मीनाजी—जी, श्रीमान्।

आबाजी—मखमली, रेशमी और जरदोजी कपड़ों का संग्रह रघुनाथ बल्लाल के निरीक्षण में है ?

मीनाजी—जी हाँ, उनकी सूची भी तैयार करा ली गई है।

आबाजी—और शस्त्रों का संग्रह ?

मीनाजी—वह भी रघुनाथ बल्लाल के निरीक्षण में है।

आबाजी—और रत्नों का संग्रह ?

मीनाजी—वह शंभूजी कावजी के पास हैं, किन्तु उन रत्नों में से कुछ चुने हुए रत्न श्री कुमारी काशीबाई के समीप भेज दिये हैं।

आबाजी—हाँ, जैसी मैं आज्ञा दे चुका हूँ वे रत्न एक स्वर्ण-थाल

में सजाकर काशीबाई श्रीमंत की सेवा में प्रस्तुत करेंगी.........[ठहरकर] और देखो, श्रीमंत के आने के मार्ग में बन्दनवार और पताकाएँ लगवा दो!

मीनाजी—इसके लिए गङ्गाबाई से कह दिया गया है।

आबाजी—और प्रतापगढ़ के किले में भवानी की पूजा की व्यवस्था सब ठीक है?

मीनाजी—जी, सोनाजी पंडित वहाँ उपस्थित हैं और पंडितराव से दान के लिए दो हजार होण भी निकलवा लिए हैं। ऐसी श्रीमंत भोंसले ने इच्छा प्रकट की थी।

आबाजी—ठीक है, शिविर-द्वार पर मंगल-दीप के साथ दो परिचारिकाओं को खड़े होने की आज्ञा दो।

मीनाजी—ये सब प्रस्तुत हैं, श्रीमान्!

आबाजी—अब तुम जा सकते हो, सब बातों में सतर्कता हो।

मीनाजी—जो आज्ञा। [जाने को उद्यत होते हैं।]

आबाजी—नहीं, तुम मेरे ही साथ रहोगे। परिचारिकाओं को ले आओ।

मीनाजी—जो आज्ञा [प्रस्थान]

[आबाजी सिंहासन के समीप जाकर सब चीजों का निरीक्षण करते हैं और गोहर की कटार ध्यान से हाथ में लेकर देखने लगते हैं। मीनाजी आते हैं और अपने साथ दो परिचारिकाओं को मंगल दीप के साथ लाते हैं। परिचारिकाएँ दोनों द्वार पर खड़ी हो जाती हैं, आबाजी कटार को सिंहासन के समीप रखकर मुड़ते हैं, इसी समय नेपथ्य में श्रीमंत भोंसले श्रीमंत शिवाजी महराज की जय! श्रीमंत भोंसले शिवाजी महाराज की जय!' का ध्वनि और तोप की सलामी। बाहर बातचीत

और हल्की कंठध्वनि ।]

आबाजी—[सजग होकर और म्यान से तलवार निकालकर] मीनाजी, तुम सिंहासन के समीप अपने स्थान पर खड़े होओ।

[मीनाजी तलवार निकालकर सिंहासन की बायीं ओर खड़े होते हैं। नैपथ्य में फिर 'श्रीमंत भोंसले श्रीमंत शिवाजी महाराज की जय !' आबाजी सोनदेव और मीनाजी जय के स्वर में अपना कण्ठ मिला कर दक्षिण द्वार की ओर देखते हुए] स्वागत श्रीमंत !

[नैपथ्य में दक्षिण द्वार से फूल उछाले जाते हैं। श्रीमंत शिवाजी (आयु ३० वर्ष) का प्रवेश। सब का नत-मस्तक होना। श्रीमंत शिवाजी गौर वर्ण के हैं, उनका शरीर बलिष्ठ और गठीला है. यौवन और शक्ति का सम्पूर्ण सौंदर्य उनके अंग-अंग से फूट रहा है। वे मझोले कद के आदमी हैं। चलने फिरने में तेजी और स्फूर्ति है, मुख पर एक हल्की सी मुस्कराहट। विशाल नेत्र, जिनमें तीक्ष्णता और चंचलता है। उनके बाल कानों के समीप लम्बे होकर उनकी दाढ़ी से मिले हुए हैं, जो नीचे जाकर नुकीली हो गई है, उनकी मूँछें भी पतली और गलगुच्छे के समीप तक आ गई हैं। कानों में दो बड़े-बड़े मोती झूल रहे हैं। माथे पर हल्की रेखाओं का एक त्रिपुंड है। गले में अनेक मोतियों की मालाएँ हैं। शिवाजी मुगल ढंग की पगड़ी पहने हुए हैं, जिसके ऊपर मोतियों और रत्नों का सिरपेच लगा हुआ है। ऊपर बड़ी सुन्दर कलंगी है, वे वक्षस्थल पर गुलाल चिह्न की पट्टियों का एक अँगरखा पहने हुए हैं, जिसमें रत्नों की राशि लगी हुई है। अँगरखे की दोनों बाहें फूली हुई हैं किन्तु कलाइयों के पास आकर चुस्त हो गई हैं, जहाँ मखमल की पट्टियाँ हैं। बगल में से होकर जानेवाला एक नीले रेशम का दुपट्टा है जो कमर की तलवार तक लटक रहा है। कमर में जरी की पेटी है

जिनका रत्नों से जड़ा हुआ छोर घुटने तक झूल रहा है। जरी की पेटी में एक कटार सजी हुई है और दूसरी ओर नीली म्यान लटक रही है जिसकी तलवार इस समय श्रीमंत शिवाजी के हाथ में है। शिवाजी सफेद रंग का चूड़ीदार पैजामा पहने हुए हैं और पैर में एड़ियों से बहुत ऊपर तक खिंचे हुए नुकीले जूते हैं।

शिवाजी के पीछे रघुनाथ बल्लाल और शम्भूजी कावजी हैं। शिवाजी के साथ पेशवा मोरोपन्त हैं जिनका वेष-विन्यास महाराष्ट्र सेनापतियों के समान है। वे सब रेशमी अँगरखे और चूड़ीदार पैजामे पहिने हुए हैं। सभी के हाथों में तलवारें हैं और कमर से म्यानें झूल रही हैं, जो कमर की पेटियों से कसी हुई हैं। सिरों पर साधारण पगड़ियाँ और माथे पर त्रिपुण्ड है। एक एक मोती की माला उनके गले में है। मोरोपन्त की पगड़ी जरी की है और ये मोती की चार मालाएँ पहने हुए हैं। श्रीमंत शिवाजी के प्रवेश करते ही उनपर जय-घोष के साथ फूलों और अक्षत की वर्षा होती है। शिवाजी रंगमंच के मध्य में खड़े हो जाते हैं और तीनों सरदार उनके समीप ही फैलती हुई किरण के रूप में खड़े हो जाते हैं। मोरोपन्त शिवाजी की दाहिनी ओर हैं। उसी समय काशी आरती-पात्र लेकर प्रवेश करती है और आरती उतारकर प्रस्थान करती है।]

शिवाजी—[चारों ओर दृष्टि डालकर गौरवपूर्ण शब्दों में।] वीरो! महाराष्ट्र जननी जीजाबाई के आशीर्वाद की विजय-लक्ष्मी तुम्हें मंगल-मय हो! स्वाधीन राज्य की स्थापना करनेवालो! तुम्हारी जाति का प्रण अमर हो! सैकड़ों बाधाओं और विपत्तियों को झेलकर फिर अपना सिरा ऊँचा करनेवाले वीरो! तुम्हारी शक्ति से महाराष्ट्र-जननी सन्तुष्ट हैं।

सब—श्रीमंत शिवाजी भोंसले की जय!!

शिवाजी—[मुस्कराकर] नहीं, यों कहो महाराष्ट्र सैनिकों की जय!

सब—[**उच्च स्वर से**] जय !!

शिवाजी—शिवा-भवानी की तलवार की चिनगारियों से ही दक्षिण में स्वतंत्रता का प्रकाश हो रहा है। बन्धुओ ! तुम्हारी वीरता का केन्द्रमंडल तुम्हारी महाराष्ट्र जननी है, जिसने सह्याद्रि के पर्वत से अपनी शक्ति-धारा के प्रवाह में तुम्हें आगे बढ़ने का वेग और बल प्रदान किया है। मोरोपन्त, कल्याण और भिवंडी नगरों को जीतने में किसकी प्रशंसा करनी चाहिए; जानते हो ?

मोरोपन्त—श्रीमंत की।

शिवाजी—नहीं ! [**रघुनाथ की ओर देखकर**] रघुनाथ ?

रघुनाथ—बीजापुर की राजनीति की।

शिवाजी—नहीं, [**शम्भू की ओर देखकर**] शम्भूजी ?

शम्भूजी—आपके आक्रमण की नीति की ?

शिवाजी—नहीं [**आबाजी की ओर देखकर**] आबाजी ?

आबाजी—मुल्ला अहमद की व्यापार-लोलुपता की।

शिवाजी—[**दृढ़ता से**] नहीं, नहीं, नहीं ! मैं इस जीत की सारी प्रशंसा देना चाहता हूँ औरङ्गजेब को या मुगल सिंहासन पर अधिकार करने की उसकी महत्वाकांक्षा को। शाहंशाह शाहजहाँ बीमार हैं; शाही बुलन्द इकबाल दारा से लोहा लेने के लिए औरंगजेब दक्षिण छोड़-कर उत्तर की ओर बढ़ गया है। वह नहीं जानता कि मीर जुमला सिर्फ खेत का धोखा है। औरंगजेब का यहाँ से चला जाना मुगल सल्तनत का दक्षिण से चला जाना है और यह विजय उसका एक नमूना है। [**सब स्वीकारात्मक सिर हिलाते हैं।**]

मोरोपन्त—यह आपकी दूरदर्शिता है।

आबाजी—यह आपकी नीति-निपुणता है।

शिवाजी—और इस अवसर से लाभ उठाने की दूरदृष्टि हमारे वीरों की है। स्वयं प्रकृति देवी ने दक्षिण में हमारे लिए अनेक पहाड़ी किले तैयार कर दिये हैं, जिनमें अपनी शक्ति के व्यूह तैयार कर मराठे काल की तरह झपट कर शत्रुओं को तलवार के घाट उतार देते हैं। मैं इससे प्रसन्न हूँ। पहाड़ियों के ऊपर से गिराए जानेवाले पत्थर लुढ़कते हुए काल की तरह शत्रुओं को अपने साथ घसीट ले जाते हैं।

मोरोपन्त—और वे इस तरह घसीटते हैं कि उनका आकार ही बदल जाता है।

शिवाजी—उसी तरह जिस तरह प्रत्येक दिन सूरज उदय होकर देखता है कि कल जिस प्रान्त पर उसने प्रकाश डाला था उसका भी आकार बदल गया है। हमारे आक्रमण की शीघ्रता सूर्य की शीघ्रता से भी शीघ्र है। अँधेरी रातों में जिस तरह चाँद बढ़ता है उसी तरह तुम्हारे राज्य की सीमा बढ़ती है।

आबाजी—और औरंगजेब उस अँधेरे में एक तारे की तरह काँप कर यह सब देखता है।

शिवाजी—लेकिन आबाजी, यह तुम स्मरण रक्खो कि यह तारा किसी दिन मुगल सल्तनत पर पहुँचकर सूरज बन सकता है। इसलिए मैंने औरंगजेब से मित्रता करना बुरा नहीं समझा जब तक कि वह मेरे साथ विश्वासघात न करे। रघुनाथ बल्लाल को कोरडे भेजकर सम्मानपूर्ण सन्धि की तलवार से मैंने औरंगजेब के नाखून काट दिए हैं। रघुनाथ तो औरंगजेब का रुख भी देख आए हैं।

रघुनाथ—श्रीमंत, मुगल सेनाओं से जब बीजापुर पराजित हुआ तो उसने औरंगजेब से सन्धि कर ली। उसी समय मैं उसके पास पहुँचा। औरङ्गजेब बहुत चिढ़ा हुआ था लेकिन आपके सन्देश से उसे सन्तोष

मिला। उसने कहा कि शिवाजी के साथ दोस्ती करना एक ऐसे शेर के साथ दोस्ती करना है जो किसी वक्त भी पैतरा बदल सकता है, खून का प्यासा हो सकता है।

आबाजी—लेकिन सारे मराठा-प्रदेश पर उसने श्रीमंत का अधिकार तो स्वीकार कर लिया।

मोरोपन्त—हाँ, अधिकार तो स्वीकार कर लिया लेकिन उसने यह शर्त भी रक्खी कि श्रीमंत मुगल सीमा की रक्षा करेंगे।

शिवाजी—मुगल-सीमा की? दक्षिण में मुगल सीमा पिघलती हुई पृथ्वी की सीमा है जो आज यहाँ बनती है, कल वहाँ बनती है। जब तक औरंगजेब खुद न्यायी है, शिवाजी भवानी की तलवार लेकर पंढरपुर में शपथ ले चुका है कि वह भी न्यायी रहेगा। लेकिन जब औरङ्गजेब विश्वासघात करेगा तो शिवाजी विश्वासघात का बदला देना भी जानता है। दादाजी कोंडदेव की शिक्षा कभी अधूरी नहीं रही।

मोरोपन्त—उसने आदिलशाह को दिल्ली जाते समय लिखा भी था कि शिवाजी ने कितने ही किलों पर अधिकार कर लिया है। उनको इन सबसे हटा दो और अगर श्रीमंत शिवाजी से मित्रता करनी ही है तो उन्हें कर्नाटक में जागीर दे दो जिससे वे बादशाही राज्य से अलग रहें और उपद्रव न मचावें।

शिवाजी—क्या इस आज्ञा में मेरे साथ सन्धि होते हुए भी विश्वास-घात की दुर्गन्धि नहीं है? फिर भी मोरोपन्त, कल औरंगजेब को सूचना दो कि मैंने मुगल सल्तनत को न छूते हुए बीजापुर पर आक्रमण किया है और कल्याण और भिवंडी के किले जीत लिये हैं। उसे मेरी विजय से किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होना चाहिए और यदि इस विजय को वह अपनी राज्य-तृष्णा में बाधक समझता है तो मुझसे

वह लोहा ले सकता है। मुगल सल्तनत का लालच छोड़कर वह दक्षिण चला आए; हमें भी मुगल सेना से लड़ने में आनन्द मिलता है। खुलकर लड़ने की इच्छा केवल औरंगजेब से होती है।

मोरोपन्त—इस समय औरङ्गजेब नहीं आ सकता। दारा की बुलन्दी से वह नाराज है। डरता है कि शाहजहाँ के बाद दिल्ली का तख्त कहीं दारा के हाथ में न पहुँच जाय। उसे दारा के भाग्य से ईर्ष्या है।

शिवाजी—तो जो अपने भाई के ऐश्वर्य से जलता है वह मेरे ऐश्वर्य से क्यों न जले ? क्यों न वह नर्मदा से उत्तर में अपनी सीमा बढ़ाये और दक्षिण का राज्य हमारे हाथ सौंप दे। हम दोनों दोस्त की तरह रहें और जिस तरह लड़ाई में हम लोग तलवारें बढ़ाना जानते हैं उसी तरह सन्धि में दोस्ती का हाथ बढ़ाना भी जानते हैं। लेकिन इसे भविष्य पर छोड़ो। आबाजी, कल्याण की लूट का पूरा विवरण तुम दे सकते हो। तुम्हीं इस लूट के सेनापति थे, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। [**सिंहासन पर बैठते हुए**।]

आबाजी—[**सिर झुकाकर**] जो आज्ञा, श्रीमंत ! आक्रमण-नीति तो आपने ही बनाई थी, मैंने उसे कार्य-रूप में परिणत करने की चेष्टा मात्र की है। बीजापुर की राजधानी में ही प्रधान मंत्री खान मुहम्मद का खून होने से जो गड़बड़ी फैल गई थी उससे सेनानायकों में कल्याण के लूटने का विचार एक दूसरे से होड़ ले रहा था। प्रजा भागना चाहती थी, लेकिन उसके लिए कोई मार्ग न था।

शिवाजी—यह मैं जानता था, इसीलिए मैंने अपनी सेना के एक बड़े भाग को उत्तर कोंकण में एकत्रित कर रक्खा था, जिससे भागने के लिए कोई मार्ग न मिल सके।

आबाजी—सत्य है, श्रीमंत, आपके भय से प्रजा उस ओर भाग ही नहीं सकती थी। बीजापुर के सेनानायकों को कल्याण के लूट लेने का अवसर न देकर मैं पर्वत श्रेणी के बीच से ही निकलकर कल्याण के नगर में घुस गया और मैंने नगर के खजाने पर कब्जा कर लिया।

शिवाजी—तुम बहुत बहादुर हो आबाजी, फिर क्या हुआ?

आबाजी—प्रजा समझ रही थी कि बीजापुर का कोई सेनापति उन्हें लूट रहा है।

मोरोपन्त—ऐसा क्यों?

आबाजी—बीजापुर के सेनापति मुस्तफा खाँ की फौज में मुसलमान और मावले ही अधिक संख्या में हैं, इसलिए मैंने अपनी जिस सेना से आक्रमण किया था उसमें मावले और मुसलमान ही अधिक रखे थे। प्रजा को मुस्तफा खाँ की सेना का पूरा भ्रम हुआ। वे डटकर मेरा विरोध भी नहीं कर सके। चुपचाप घरों से भाग निकले।

शिवाजी—तुम्हारी बुद्धिमत्ता सराहनीय है, आबाजी।

आबाजी—श्रीमंत! फिर मैंने कुनबी घुड़सवारों की एक टुकड़ी लेकर कल्याण की सेना पर आक्रमण कर दिया। शम्भूजी कावजी मेरे साथ ही थे, सेना लापरवाह और बेखबर थी। शम्भूजी ने अस्त-व्यस्त सेना को ठिकाने लगाकर ५५१ घोड़ों पर घेरा डालकर उन्हें आपकी सेना के भीतर कर लिया। इस समय वे घोड़े आपके अश्व-निरक्षकों के पास हैं।

शिवाजी—मैं उन घोड़ों का निरीक्षण करूँगा। [**शम्भू की ओर**] शम्भूजी! तुम वीर हो, मैं तुम्हें प्रतापगढ़ का दबीर (सामन्त) नियुक्त करता हूँ। [**शम्भूजी दोनों हाथों में तलवार रखकर अभिवादन करते हैं।**] और सुनो, उन ५५१ घोड़ों में से दो घोड़े अपने लिए चुनकर

शिवाजी—[**प्रसन्न होकर**] बहुत अच्छा! [**मोरोपन्त से**] मोरोपंत ये सब सस्त्र विजयादशमी के दिन तक सुरक्षित रक्खो और उस दिन सेना संगठन करते समय नेताओं के आधीन जितने भी 'पागादल' हों उनमें वितरित करने की घोषणा कर दो। जितने भी वर्गी, हवलदार, जुमलादार और एक हजारी हों उन सबका इस शस्त्र-संग्रह में भाग होगा। इसकी सूचना 'सर-ए-नौबत' को दे दो। हाँ, एक बात और, शरीर-रक्षक मावले प्यादों को भी इन शस्त्रों के पाने का अधिकार होगा।

मोरोपन्त—जो आज्ञा।

आबाजी—श्रीमंत, आपकी शक्ति का सहारा पाकर मैंने इस बार लूट के संग्रह में अतुल सम्पदा प्राप्त की है।

शिवाजी—आबाजी, मैंने तुम्हें अपना मजमुआदार (अमात्य) नियुक्त किया। मोरोपन्त! इस बात की घोषणा कल ही हो जानी चाहिए।

मोरोपन्त—जो आज्ञा।

[**आबाजी घुटने टेककर तलवार को दोनों हाथों में रखकर अभिवादन करते हैं।**]

आबाजी—[**उठकर**] श्रीमंत, मैं अपने को इस पद के योग्य सिद्ध करूँगा। आक्रमण में मैंने जो अतुल सम्पदा प्राप्त की है वह मैंने कल्याण के शाही खजाने से प्राप्त की है। सदर और मुहतासिब का सिर धड़ से जुदाकर मैंने ऐसे-ऐसे रत्न और कीमती जवाहिरात पाए हैं जो अभी तक की लूट में प्राप्त नहीं हो सके थे। श्रीमंत, बड़ी-बड़ी पेटियों में वे रत्न ऐसे बिखरे हुए थे जैसे आकाश में तारे। मैंने उन्हें एकत्रित कर सूर्य के सामान चमकती हुई सोने की पेटी में डाल दिया है। उन रत्नों में से चुने हुए रत्न मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। [**कुछ जोर से पुकारकर**] काशी!

[स्वर्ण-थाल में रत्न लेकर काशी का प्रवेश। वह श्रीमंत शिवाजी के सामने घुटना टेककर उनके सामने स्वर्ण-थाल बढ़ाती है।]

शिवाजी—[स्वर्ण थाल की ओर देखकर, प्रसन्नता के स्वर में] बहुत सुन्दर रत्न हैं! आबाजी, तुमने इन रत्नों का संग्रह कर महाराष्ट्र को बहुत सम्पन्न बना दिया है। अब वह अनेक वर्षों तक बड़ी से बड़ी शक्ति से मैदान ले सकता है। तुम्हें अनेक साधुवाद। काशी, उठो, इन रत्नों के पानेवाले अधिकारियों के नाम मैं लेना चाहता हूँ।

[काशी उठ खड़ी होती है।]

शिवाजी—सब से पहले काशीबाई, आबाजी सोनदेव की बहिन जिसकी मंगल-कामना से यह विजय पूर्ण हुई! [एक रत्न चुनकर काशीबाई को देते हैं। काशीबाई बाएँ हाथ में थाल लेकर दाहिने हाथ से लेती है और प्रणाम करती है।]

काशी—श्रीमंत भोंसले शिवाजी सदैव विजयी हों।

शिवाजी—[मुस्कराकर] जिससे तुम्हें सदैव ऐसे रत्नों की प्राप्ति हो! मुझे विश्वास है, तुम्हें सदैव अच्छे से अच्छे रत्नों की प्राप्ति होगी। सबसे श्रेष्ठ रत्न तो अभी तुम्हें मिलना है। आबाजी उस रत्न का ध्यान तुम रखना।

[काशी लज्जित होकर संकुचित होती है।]

आबाजी—श्रीमंत, मैं ध्यान रक्खूँगा।

शिवाजी—इन रत्नों के दूसरे अधिकारी का नाम श्री आबाजी, सोनदेव हैं। महाराष्ट्र सेना के नायक आबाजी, इसे पारितोषिक रूप में स्वीकार करो।

आबाजी—[झुककर] श्रीमंत की कृपा। [रत्न लेकर अभिवादन करते हैं।]

शिवाजी—[**दो रत्न लेकर**] इन दो रत्नों के अधिकारी पेशवा मोरोपन्त हैं।

मोरोपन्त—[**रत्नों को हाथ में लेकर**] श्रीमंत की कृपा! [**अभिवादन करते हैं।**]

शिवाजी—मोरोपन्त, शेष रत्नों के दो भाग होंगे। एक भाग मेरी पूज्य जननी श्रीमती जीजाबाई की सेवा में प्रस्तुत किया जाय और दूसरा भाग राजकोष में जमा हो।

मोरोपन्त—जो आज्ञा, श्रीमंत! [**काशी से**] काशीबाई, यह रत्न संग्रह, पंडितराव को देकर राज्य भांडार में जमा कर दो। शेष रत्न शम्भूजी कावजी जमा कर देंगे।

शम्भूजी—जो आज्ञा।

[**काशी पहले श्रीमंत शिवाजी को और बाद में अन्य सेनापतियों को प्रणाम करके जाती है।**]

शिवाजी—मैं इस आक्रमण के परिणाम से बहुत प्रसन्न हूँ। यह सब तुम लोगों की शक्ति से हुआ है। वीरो, सदैव शक्ति और साहस में विश्वास रक्खो। आत्म-सम्मान भवानी का दिया हुआ सबसे बड़ा वरदान है। उस वरदान को प्राप्त करने की चेष्टा सदैव करते रहो। तुमसे महाराष्ट्र-जननी बहुत प्रसन्न है। तुम सब ,श्रीमती जीजाबाई के चरणों में प्रणाम करने का यश प्राप्त करो। एक समय आवेगा जब मुगल सल्तनत को तुम लोगों के आतंक से सिर झुकाना पड़ेगा। तुम्हीं पर मेरी भावी आशाएं निर्भर हैं। मेरे साथ कहो "भवानी की जय।" [**भवानी की जय का नारा**] "श्रीमती जीजाबाई की जय" [**जीजाबाई की जय का नारा**] मेरे साथ तुम सब लोग श्रीमती जीजाबाई के दर्शन करोगे और साथ ही साथ प्रतापगढ़ के किले में चलकर शिवा-भवानी

की पूजा में उपस्थित रहोगे। मोरोपन्त! साथ ही साथ मैं शस्त्र-पूजा भी करूँगा। शस्त्रागार के समस्त शस्त्र उस समय मेरे सामने रहना चाहिए।

मोरोपन्त—जैसी श्रीमंत की आज्ञा।

शिवाजी—अच्छा, अब हम चलेंगे। आबाजी, तुमसे एक बात विशेष रूप से कहनी है। तुम मेरे साथ होगे। [उठने के लिए प्रस्तुत]

आबाजी—श्रीमंत, जो आज्ञा, किन्तु एक प्रार्थना और निवेदन करना है। कल्याण के आक्रमण का एक उपहार और है।

शिवाजी—अच्छा, उसे भी उपस्थित करो। आबाजी मैं तुम्हारी वीरता से बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे हृदय में तुमने वह स्थान बना लिया है जो आज तक किसी सैनिक ने नहीं बनाया। तुम्हें कल्याण का आक्रमण सौंपकर मैंने अपने युद्ध की नीति में सर्वश्रेष्ठ कार्य किया है। मुझे प्रसन्नता है कि तुम मेरे सेनापति और मजमुआदार (अमात्य) हो। वह श्रेष्ठ उपहार कौन-सा है जो मेरे सामने अन्त में प्रस्तुत करना चाहते हो?

आबाजी—श्रीमंत, इस आक्रमण में जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं वे सब आपने अपने सैनिकों और सेनापतियों में वितरित कर दी हैं। "मैं भवानी की जय" घोष के साथ कह सकता हूँ कि आपके सदृश सेनापति किसी भी जाति के युद्ध-क्षेत्र में नहीं मिला। आपने अपने से अधिक सैनिकों का मान रक्खा है। स्वयं अच्छी से अच्छी वस्तु अपने पास न रखकर आपने अपने सैनिकों में बाँट दी हैं। मेरी प्रार्थना है कि यह अन्तिम उपहार आप अपनी सेवा ही में रहने दें।

शिवाजी—वह कौन-सा उपहार है, आबाजी! मुझे किसी उपहार की आवश्यकता नहीं है। मेरे लिए तो एकमात्र शिवा-भवानी की

तलवार के अतिरिक्त और कोई उपहार ही नहीं। फिर भी हमें उस उपहार को देखने में प्रसन्नता होगी।

आबाजी [द्वार की ओर देखकर] श्रीमंत, कल्याण प्रदेश के सूबेदार अरब जाति के रईस मुल्ला अहमद की पुत्रवधू, गौहरबानू। **[शिवाजी गम्भीर हो जाते हैं]** अपनी सुन्दरता में अद्वितीय और अपने शील में अनुपम! आपकी सेवा करने के लिए मैंने उसे बन्दी किया है।

[शिवाजी की मुस्कराहट ओठों में डूब जाती है। वे अधिक गम्भीर हो जाते हैं।]

शिवाजी—मुझे इस बात की सूचना है। मैं अभी तुमसे यह सब सुनता। **[मोरोपन्त से]** मोरोपन्त, क्या मेरे सेनापति मेरे युद्ध की नीति नहीं जानते?

मोरोपन्त—आश्चर्य, आबाजी, आबाजी? **[प्रश्न सूचक मुद्रा]**

आबाजी—'स्त्रियों और बच्चों को कैद मत करो', आपकी इस आज्ञा को मानकर मैंने अपने आक्रमण में किसी स्त्री और बच्चे को छुआ भी नहीं। मैं सूबेदार मुल्ला अहमद के सब परिवार को बन्दी कर सकता था, किन्तु आपकी आज्ञा को समर्थ गुरु रामदास की आज्ञा की भाँति सिर माथे चढ़ाकर मैंने किसी को बन्दी नहीं किया। किन्तु गौहरबानू स्त्री नहीं है, श्रीमंत! देवी है। वैसा रूप मनुष्य जाति में नहीं होता जैसे आकाश से एक तारिका टूट आई हो और चाँदनी का शरीर बनाकर गौहरबानू हो गई हो।

शिवाजी—मोरोपन्त, यह वही गौहरबानू है जिसके सौंदर्य की कीर्ति समस्त दक्षिण में है?

मोरोपन्त—जी हाँ श्रीमंत, मुल्ला अहमद की पुत्रवधू गौहरबानू।

शिवाजी—सौन्दर्य एक देवी वरदान है, उसके लिए शब्दों

की आवश्यकता नहीं है। अच्छा, मैं भी उसे देखूँगा। [उठकर] गौहरबानू......!

आबाजी—[**प्रसन्नता से**] श्रीमंत, मैंने गौहरबानू की कटार भी हस्तगत कर सिंहासन के चरणों में रख दी है। [**कटार उठाते हैं।**] जिससे वे आप पर किसी अवसर पर आक्रमण न कर सकें। कटार रहने से वे या तो आप पर आक्रमण कर सकती थीं या आत्म-हत्या।

शिवाजी—अच्छा, यह गौहरबानू की कटार है। मैं समझा कि यह कक्ष की सुन्दरता के लिए सिंहासन के नीचे सजा दी गई है। [**हाथ में लेकर**] यह गौहरबानू की कटार है। वे मुझपर आक्रमण कर सकती हैं या आत्म-हत्या......[**सोचकर**] किन्तु श्रीमती जीजाबाई की कृपा से दोनों बातें नहीं हो सकतीं। [**फिर सोचते हुए**] हाँ, गौहर-बानू की कटार से यादव रामचन्द्र मारा गया है। लेकिन शिवाजी यादव रामचन्द्र नहीं है......[**सोचते हुए**] पर वह यादव रामचन्द्र भी हो सकता है। [**कटार सावधानी से देखते हैं।**] मुल्ला अहमद की पुत्रवधू गौहरबानू। सौंदर्य और शक्ति एक साथ ही शरीर में एकत्रित है जैसे चन्द्र और सूर्य एक साथ मिल गए हों। अच्छा......मैं गौहरबानू को देखूँगा।

आबाजी—[**जोर से**] गौहरबानू श्रीमंत की सेवा में उपस्थित हो।

[**सोना के साथ गौहरबानू का प्रवेश। शिवाजी सिंहासन से उतर-कर एक ओर खड़े हो जाते हैं और सब चकित हो जाते हैं।**]

शिवाजी—[**गौहरबानू की तरफ देखते हुए विस्मित मुद्रा में**] गौहरबानू!!! यह दैवी वरदान......[**आबाजी प्रसन्न होते हैं।**] आबाजी, तुम यहाँ से जाओ।

आबाजी—[**झुककर**] जो आज्ञा श्रीमंत [**अभिवादन कर प्रस्थान।**]

शिवाजी—[सोचते हुए] शम्भूजी कावजी, तुम भी जाओ।

शम्भूजी—[झुककर] जो आज्ञा, श्रीमंत। [अभिवादन कर प्रस्थान]

शिवाजी—रघुनाथ बल्लाल, तुम्हारी भी आवश्यकता नहीं।

रघुनाथ—[झुककर] जो आज्ञा श्रीमंत! [अभिवादन कर प्रस्थान]

शिवाजी—मीनाजी तुम भी जा सकते हो।

मीनाजी—[झुककर] जो आज्ञा श्रीमंत। [अभिवादन कर प्रस्थान।]

शिवाजी—अच्छा मोरोपन्त देशपांडे, तुम भी मुझे एकाकी रहने दो।

मोरोपन्त—[झुककर] जो आज्ञा श्रीमंत। [अभिवादन कर प्रस्थान।]

[शिवाजी नीचा मस्तक कर टहलने लगते हैं। टहलते हुए सौम्य-भाव से सोना से कहते हैं।]

शिवाजी—सोना, संसार में बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो अच्छी होकर भी बुरी हैं और बुरी होकर भी अच्छी हैं। मैं अपने मराठा वीरों को इस आक्रमण के बहाने ये दोनों बातें समझाना चाहता हूँ। [ठहरकर] तुम्हारा भाई यादव रामचन्द्र लौटकर नहीं आया। यह बुरा हुआ। लेकिन अच्छा यह हुआ कि उसके प्राण एक स्त्री की रक्षा करने में गये। उसने मेरे आदर्शों की रक्षा की। यदि वह जीवित रहता तो मैं उसे एक हजारी बनाता। उसका लौटकर न आना यदि तुम्हारे लिए बुरा हुआ तो सारे महाराष्ट्र के लिए अच्छा हुआ। यह आदर्श प्रत्येक महाराष्ट्र वीर के लिए आवश्यक है। तुम तो एक हजारी नहीं बन सकती; फिर भी तुम्हें प्रति वर्ष एक हजार होण मिलेंगे। एक बात और सोचो। एक हजार होण तुम्हारे भाई का स्थान नहीं ले सकते। इसलिए भाई की पूर्ति भी होना है। मैं इसका

शीघ्र ही निर्णय कर दूँगा, तुम बाहर थोड़ी देर प्रतीक्षा करो।

सोना—[घुटने टेककर विह्वल स्वर में] श्रीमंत! [आगे कुछ नहीं कह सकती।]

शिवाजी—[आश्वासन के स्वर में] उठो सोना, मुझे तुम्हारे दुःख के इतिहास की एक एक बात मालूम हो गई। महाराष्ट्र की वीर कन्या हो। मेरे निर्णय की शीघ्र प्रतीक्षा करो। तुम बाहर जाओ।

सोना—[सिर झुकाकर] जैसी आज्ञा! [प्रस्थान]

[श्रीमंत शिवाजी थोड़ी देर तक टहलते रहते हैं। कभी वे गौहरबानू की ओर देख लेते हैं और कभी सिंहासन की ओर।]

शिवाजी—[टहलते हुए] सुबह के वक्त जब कोई सितारा डूबता है तो आसमान बदरंग हो जाता है। सितारा आसमान से नहीं कहता कि तू बदरंग हो जा। क्यों? इसलिए कि सितारा शाम को फिर निकलकर कहता है कि मेरी दुनिया फिर वैसे ही भरी-पूरी है। आसमान अगर जरा सी बात पर बदरंग हो जाय तो तारे का कुछ बिगड़ता नहीं है। गौहरबानू, आपका कुछ नहीं बिगड़ा है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि आप आसमान के एक कोने में न होकर सिर्फ दूसरे कोने में हैं। आपकी रोशनी में कोई फर्क नहीं है और शिवाजी उस रोशनी से अपनी जिन्दगी में उजेला करना चाहता है।

[शिवाजी गौहर को देखते हैं। गौहर चुप है।]

शिवाजी—आप चुप हैं तो मालूम होता है जैसे सुबह नहीं होना चाहती। आपके बदन पर फूलों की माला किस कदर हँस रही है और आप चुप हैं। आप अपनी सारी हँसी फूलों को दे देंगी तो ये उसे सँभाल भी न सकेंगे, मुरझा जाएँगे। [ठहरकर] आप डरती हैं। जिस दिन हमारे मुल्क की औरतें डरना छोड़ देंगी उसी दिन हमारे मुल्क की तरफ कोई

देख भी नहीं सकेगा। [गौहरबानू की कटार हाथ में लेते हुए] आपकी कटार इस वक्त मेरे हाथों में है। मैं उसे आपको वापस देना चाहता हूँ। आप अपनी कटार हाथ में ले लें। मैं स्त्री के हाथ में शस्त्र देखकर प्रसन्न होता हूँ। और जब मैंने सुना कि आप इस कटार से शिवाजी पर वार करना चाहती हैं या खुदकुशी करना चाहती हैं तो मुझे खुशी और रंज दोनों एक साथ हुए। खुशी इस बात से कि आपमें शिवाजी पर वार करने का हौसला है और रंज इस बात से कि आप खुदकुशी कर सकती हैं। खुदकुशी तो वे करते हैं जो जिन्दगी को पहिचानते नहीं। जो जिन्दगी के फूल को काँटा समझते हैं। आपसे मुझे ऐसी उम्मीद नहीं है। लीजिए अपनी कटार और मुझपर वार कीजिए। [गौहरबानू के समीप कटार रखते हैं। सिंहासन के समीप एक कटार और देखकर।] यह एक कटार और है। [उठाकर गौहरबानू के समीप रखते हुए] उसे भी लीजिए, जिससे आप यह कह सकें कि मैंने, शिवाजी ने, महाराष्ट्र की देवी जीजाबाई के पुत्र ने, आपके साथ कोई धोखा नहीं किया।

[शिवाजी सिंहासन से कटार उठाने के लिए झुकते हैं इसी बीच गौहरबानू मुख का घूँघट उलटकर सामने देखती है। गौहरबानू के खुले हुए मुख पर दृष्टि पड़ते ही शिवाजी एक कदम पीछे हट जाते हैं।]

शिवाजी—[प्रशंसा के स्वरों में] गौहर········बानू······देवी!

गौहर [उसी स्वरों में] श्रीमंत······।

शिवाजी—देवी, मेरे बगैर कहे तुमने अपने मुख से पर्दा उठा दिया?

गौहर—[सँभलकर] श्रीमंत, बहुत दिनों से वीर शिवाजी को देखने की हसरत थी। जिस शिवाजी ने अपनी हिम्मत से मुगल सल्तनत से लोहा लिया, जिसने बीजापुर को कभी चैन न लेने दिया,

जिसने अपनी अकेली ताकत से पुरन्दर के किले को जीता, जिसने चद्रराव मोरे से जावली छीन ली, जिसने रायगढ़ के किले पर अपना झण्डा फहराया, जिसने कोंकण के मैदान को सर किया उस वीर शिवाजी को देखने की हसरत किसके दिल में न होगी ?

शिवाजी—[मुस्कराकर] देखा, देख लिया ?

गौहर—जी हाँ, देखा और······समझा कि शिवाजी और रुस्तम में कोई फर्क नहीं है।

शिवाजी—गौहरबानू, आपकी नजर से शिवाजी अपनी फतह इतनी जल्दी नहीं चाहता और अपनी नजर से वह इतनी आसानी से पराजित भी नहीं हो सकता। आपकी सुन्दरता दक्षिण के गोंघालियों की कहानी बन रही है। सरदारों की नजरों में आपकी सुन्दरता उनके हिर्सोहवस की आखिरी सीमा है। लेकिन शिवाजी इस सुन्दरता से हार नहीं मान सकता, यद्यपि वह इसकी पूजा करना चाहता है।

बानू—मेरी सुन्दरता की पूजा ? मैं जानती हूँ सुन्दरता का परिणाम क्या होता है।

शिवाजी—सुन्दरता का परिणाम होता है—आँखों का अपने सच्चे रास्ते पर आना। लेकिन ये आँखें इतनी हल्की होती हैं कि जरा से इशारे पर बहक जाती हैं। शिवाजी अपनी आँखों का रास्ता पहिचानता है। आपकी इस सुन्दरता में मुझे अपनी माँ जीजाबाई का मुख दीख पड़ता है, अपनी माँ जीजाबाई की मुस्कान दीख पड़ती है। आपके बोलने में मुझे जीजाबाई का आशीर्वाद सुन पड़ता है !

गौहर—[विह्वल होकर, आगे बढ़कर] श्रीमंत······।

शिवाजी—मैं सिर्फ यही सोचता हूँ कि अगर मेरी माँ जीजाबाई आपकी तरह खूबसूरत होतीं तो मैं भी एक खूबसूरत सरदार होता।

गौहर—[आत्मविभोर होकर] श्रीमन्त, शिवाजी !

शिवाजी—मुझे श्रीमंत न कहें ! शिवा कहें। जिस नाम से श्रीमती जीजाबाई मुझे पुकारती हैं।

गौहर—[मुख का वस्त्र पूरी तरह खोलकर] ओह ! श्रीमंत शिवा।

शिवाजी—आप कुछ देर के लिए मेरे यहाँ मेहमान हैं। फिर आपको इज्जत के साथ सूबेदार मुल्ला अहमद की खिदमत में भेज दिया जायगा।

गौहर—[अस्फुट स्वर में] ओह ! मैंने गुनाह किया है। मैंने गुनाह किया है ! श्रीमंत शिवाजी के बारे में ग़लत खयाल सोचकर मैंने गुनाह किया है। मुझे माफ़ करो मैं माफी चाहती हूँ।

शिवाजी—मेहमानों को यह कहना शोभा नहीं देता। आपने कोई कुसूर नहीं किया। कोई गुनाह नहीं किया। गुनाह तो मैंने किया कि पूजा के एक फूल को देवता के मस्तक से उठा लिया। मैं उस फूल को वहीं रखना चाहता हूँ। और अपने अपराध के लिए सिर झुकाता हूँ।

[शिवाजी अपना मस्तक झुकाते हैं।]

गौहर—आपने अपराध कहाँ किया ! अपराध तो आपके सरदार ने किया।

शिवाजी—मेरे सरदार का अपराध मेरा ही अपराध है। मैं उससे मुक्त नहीं हो सकता, देवी ! इस जीत में मेरी हार छिपी हुई है।

गौहर—मैंने ऐसा बहादुर सिर्फ शिवाजी ही को देखा जो जीतकर भी नहीं जीतना चाहता, जो बन्दी को अपमान के बदले सम्मान देता है। जो कैदी को अपना मेहमान मानता है.......!

शिवाजी—लेकिन बगैर मेहमान की खातिर किए मैं उसे योंही

नहीं जाने दे सकता। [अपने अङ्गरखे के नीचे से शिवाजी एक काग़ज़ निकालते हैं और उसे गौहरबानू के सामने करते हुए] आप जानती हैं, यह क्या है ?

[गौहर कुछ नहीं बोलती। अवाक् होकर रह जाती हैं।]

गौहर—[देखकर] यह किसकी तसवीर है ?

शिवाजी—यह मैं आपको भेंट करता हूँ।

[शिवाजी गौहर के हाथ में वह कागज भेंट करते हैं।]

शिवाजी—महरानी जीजाबाई की। मेरी माँ की तस्वीर है। मेरी ज़िन्दगी में मुझे यह सबसे प्यारी है। इस तसवीर की ताकत से ही मैंने इतने किले फतेह किये हैं ! मेरी ताकत कुछ भी नहीं है। मैंने आपके सामने यह शीशा पेश किया है जिसमें आप इतनी खूबसूरत होकर अपना अक्स देख सकें। मेरे सामने जीजाबाई और गौहरबानू में कोई फर्क नहीं है।

गौहर—[तस्वीर अपने सीने से लगाकर] शिवाजी ! ! ! मैंने जैसा सुना था वैसा ही पाया।

शिवाजी—माँ, आप इस सिंहासन पर बैठें। [सिंहासन की ओर संकेत करते हैं।]

गौहर—मैं इस आसन के लायक नहीं हूँ।

शिवाजी—दरअसल आप इस आसन के लायक नहीं हैं। आपके लिए तो इससे भी अच्छा आसन चाहिए। लेकिन कल्याण के खीमे में कोई खास इन्तजाम न होने के कारण आप शिवाजी को माफ करें। बैठिए, आप इस सिंहासन पर बैठिए। [शिवाजी गौहरबानू को सिंहासन पर बिठलाते हैं।] आप देवी हैं। हमारे यहाँ देवी के हाथ में शस्त्र होता है। आप भी अपने हाथ में कटार लें। लीजिए अपनी कटार।

[गौहर कटार ले लेती है ।]

शिवाजी—[घुटने टेककर प्रणाम करते हुए] जीजाबाई के सदृश अपनी माँ को शिवा प्रणाम करता है ।

गौहर—श्रीमंत शिवाजी का भाग्य हमेशा ऊँचा रहे । लेकिन शिवाजी उठो, मुझे इतने महापुरुष को झुकते देखकर शरम मालूम हो रही है ! मुझे.......।

शिवाजी—माँ, आप अपने गौरव का अनुभव कीजिए । सेनापति की गलती के लिए मैं आपसे माफी चाहता हूँ । [पुकारकर] आबाजी !

[आबाजी का प्रवेश । वह गौहरबानू को सिंहासन पर देखकर प्रसन्न हो जाता है ।]

शिवाजी—आबाजी तुमने जीजाबाई को देखा है ?

आबाजी—श्रीमंत, मैंने अनेक बार जननी के दर्शन किए हैं ।

शिवाजी—एक बार दर्शन और करो !

[आबाजी इधर-उधर देखते हैं, किन्तु जीजाबाई नहीं दिखातीं । वे शून्य दृष्टि से शिवाजी की ओर देखते हैं ।]

शिवाजी—आसन पर शिवाजी की माता को देखकर भी नहीं पहिचान सकते ?

[आबाजी डरकर घुटने टेककर अभिवादन करते हैं ।]

शिवाजी—[गौहर से] माँ ! सेनापति आबाजी को क्षमा कीजिए ।

गौहर—मैंने माफ किया । तुम हमेशा फतेह हासिल करो । लेकिन [रुककर] कुछ सोच समझकर ।

शिवाजी—[मुस्कराकर] हाँ, सोच-समझकर, आबाजी ! आबाजी, अन्य सेनापतियों को स्वयं जाकर सूचना दो कि वे इसी समय आकर शिवाजी की माता गौहरबानू को प्रणाम करें । सोना को भी सूचना

दो कि वह मेरे समीप उपस्थित हो।

आबाजी—[सिर झुकाकर] जो आज्ञा। [प्रस्थान]

शिवाजी—देवी, सोना का भाई यादव रामचन्द्र आपके हाथ से मारा गया।

गौहर—शिवाजी, मुझे इस बात का सख्त अफसोस है कि गलती से मेरी छुरी उसकी तरफ उठ गई। वह बेचारा खुद नहीं जानता था कि मैं उसके सीने में कटार भोंग दूँगी। इसी वजह से वह बिलकुल ही निश्चिंत था। वह तो मुझे बचाने आया था। उसे अपनी तरफ आते देखकर मैं समझी कि वह भी मुझे कैद करने की गरज से आ रहा है। भाई बहिन की रक्षा करने आ रहा था और बहिन ने भाई के सीने में खंजर भोंक दिया। मुझे आप सजा दीजिए। कहिए मैं इससे कैसे सुबुकदोश हो सकती हूँ।

शिवाजी—आप चिन्ता न करें। मैं इसका भी इन्तजाम कर दूँगा।

[आबाजी सोनदेव के साथ मोरोपन्त, रघुनाथ बल्लाल, शम्भूजी कावजी, मीनाजी और सोना का प्रवेश। सब यथास्थान खड़े होकर शिवाजी को अभिवादन करते हैं।

शिवाजी—[मोरोपन्त से] मोरोपन्त, मेरी माँ को प्रणाम करो।

[मोरोपन्त घुटने टेककर प्रणाम करते हैं।]

शिवाजी—[गौहरबानू से] देवी, ये मेरे पेशवा मोरोपंत हैं। [और क्रमशः सेनापतियों को संकेत करते हुए] ये रघुनाथ बल्लाल, जावली के शुरूनवीस। [बल्लाल अभिवादन करते हैं] ये शम्भूजी कावजी, प्रतापगढ़ के दबीर [शम्भूजी अभिवादन करते हैं।] ये मीनाजी, आबाजी के सहायक सेनापति। [मीनाजी अभिवादन करते हैं] इन सब को

आशीर्वाद दीजिये।

गौहर —[हाथ उठाकर] तुम सब फतह हासिल करो।

शिवाजी—[आवाजी की ओर संकेत कर] और इन्हें तो आप जानती ही हैं?

गौहर—मैंने इनका कुसूर माफ किया।

शिवाजी—आवाजी! तुम जानते हो कि सेना के आक्रमण में मेरा आदेश है कि शत्रुओं के देश की स्त्रियों का किसी तरह भी अपमान नहीं होना चाहिए—उन्हें माँ और बहिनों के समान आदरणीय और पूज्य समझकर उनकी इज्जत करनी चाहिए—बच्चों को कभी उनके माता-पिता से जुदा मत करो—गाय मत पकड़ो और ब्राह्मणों के ऊपर अत्याचार मत करो—आठ महीने बाद लौटकर छावनी में चले आओ—कुरान की उतनी ही इज्जत होनी चाहिए जितनी भवानी की पूजा की या समर्थ गुरु रामदास की वाणी की—मसजिद का दरवाजा उतना ही पवित्र है जितना तुम्हारे मन्दिर का कलश! शिवा के लिए इस्लाम धर्म उतना ही पूज्य है जितना हिन्दू धर्म। जमीन पर गिरा हुआ कुरान का एक एक पन्ना शिवा ने अपनी तलवार से उठाकर मौलवियों के सिर पर रख दिया है। मेरे लिए धर्म के ख्याल से हिंदू और मुसलमान में कोई फर्क नहीं है! मैंने हमेशा इस बात का ख्याल रक्खा है कि पहले मेरे कलेजे में पड़ेगी बाद को मसजिद की दीवाल में, फिर मेरे सेनापति होकर तुमने मेरे सिद्धान्तों के विरुद्ध ऐसा काम क्यों किया? तुमने मुझे सदाचार की कसौटी पर कसना चाहा, मेरी परीक्षा ली या अपनी स्वार्थ-साधना का रास्ता तैयार करना चाहा? तुमने समझा होगा कि गौहरबानू के सौन्दर्य के सामने शिवाजी का सिद्धान्त पानी हो जायगा। किन्तु भवानी का भक्त

शिवाजी भवानी का भक्त होने की योग्यता रखता है। जीजाबाई का पुत्र शिवाजी शत्रु की स्त्री में भी जीजाबाई की तस्वीर देखता है। बोलो, इस अपराध के लिए तुम्हें क्या दण्ड मिलना चाहिए। यदि यह अपराध किसी साधारण सिपाही द्वारा होता तो उसे प्राण दण्ड दिया जाता लेकिन तुम मेरे सेनापति हो। और तुम्हें मैंने अभी अपना मजमुआदार नियुक्त किया है। बोलो, स्वयं तुम पसन्द करो कि तुम्हें किस प्रकार का दण्ड दिया जाय।

आबाजी—श्रीमान्, मुझे भी प्राण-दंड दीजिये !

शिवाजी—नहीं, तुम्हें प्राण-दंड नहीं मिलेगा। शिवाजी उपकारों को स्मरण रखता है। वह एक भूल पर अपने सेवक की सच्ची सेवाओं को तुच्छ नहीं मान सकता। फिर भी तुम्हें एक पवित्र दण्ड दूँगा।

आबाजी—आज्ञा कीजिए, श्रीमंत।

शिवाजी—[सोना की ओर संकेत कर] सोना को तुम जानते हो? यह बेचारी बहिन है जिसका भाई यादव रामचन्द लौटकर नहीं आया। यादव रामचन्द्र शिवा के आदेशों को स्मरण रखकर गौहरबानू की रक्षा में अपने प्राण खो बैठा है। वह स्वर्गीय बन्धु शिवा का प्यारा सैनिक था। यदि वह जीवित रहता तो उसे एक हजारी पद दिया जाता। किन्तु वह अब इस संसार में नहीं है। इसलिए सोना को प्रतिवर्ष एक हजार होंण राज्य की ओर से प्रदान किए जावेंगे।

मोरोपन्त—बहुत सुन्दर निर्णय किया श्रीमंत ने।

शिवाजी—किन्तु इस वार्षिक पुरस्कार से सोना के भाई की पूर्ति नहीं हो जाती। इसलिए आबाजी, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम जीवन-पर्यन्त सोना को अपनी बहिन मानकर उसका उत्तरदायित्व

सम्हालोगे ।

आबाजी—श्रीमंत शिवाजी महाराज की जय । [सोना से] बहिन सोना ! तुम आज से मेरी और काशी की बहिन हो [शिवाजी से] किन्तु यह दण्ड बहुत छोटा है । श्रीमंत !

शिवाजी—इससे भी अधिक दण्ड पाने की याचना देवी गौहर-बानू से करो ।

गौहर—मैंने तो तुम्हें माफ कर ही दिया आबाजी ! लेकिन श्रीमंत के कहने से मैं भी तुम्हें सजा दूँगी !

आबाजी—आज्ञा कीजिए ।

गौहर—वह यह कि तुम काशीबाई के साथ ही साथ सोनाबाई की शादी भी बराबर की हैसियत से करोगे । दोनों की शादी भी एक साथ होनी चाहिए ।

आबाजी—जो आज्ञा । यह तो दण्ड नहीं मेरी प्रसन्नता का कारण है । मैं सोनाबाई का विवाह काशीबाई के विवाह के साथ ही करूँगा और अधिक समारोह से । जीवन भर बहिन रहनेवाली सोना के लिए जो कुछ भी मैं कर सकूँगा करूँगा ।

शिवाजी—आबाजी, अब मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । तुम्हें अभी एक कार्य और करना है ।

आबाजी—आज्ञा श्रीमंत ! भविष्य में मुझसे इस प्रकार का कोई अपराध न होगा इस बात का मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ । आगे जो आप आज्ञा करें ।

शिवाजी—देवी गौहरबानू ने आज रत्नों से तो शृङ्गार नहीं किया किन्तु जितनी फूल मालाओं से शृङ्गार किया है उतने हीरे और मोतियों की मालाओं से उनका शृङ्गार किया जाय और तुम सूबेदार

मुल्ला अहमद की सेवा में उन्हें सम्मान सहित पहुँचा दो ।

आबाजी—[**सिर झुकाकर**] जो आज्ञा, ऐसा ही होगा ।

शिवाजी—किन्तु इसके पूर्व कि देवी गौहरबानू यहाँ से जावें, वे मुझे क्या उपहार देंगी । [**गौहरबानू की ओर दृष्टि डालते हैं ।**]

गौहर—[संकुचित होकर] जो आप कहें ।

शिवाजी—[**मुस्कराकर**] माँ की एक हँसी ।

गौहर—[**हँसकर**] लीजिए, मैंने हँस दिया । लेकिन मैं अपनी तरफ से एक बात करूँगी ।

शिवाजी—प्रसन्नता से ।

गौहर—महाराष्ट्र माताओं और बहिनों की तरह मैं आपका तिलक करूँगी ।

शिवाजी—यह मेरा सौभाग्य है । [**सोना से**] सोना, तिलक-सामग्री शीघ्र लाओ ।

सोना—जो आज्ञा [**प्रस्थान**]

शिवाजी—देवी, शिवा ने आज तक दुश्मन की स्त्री को अपनी माँ और बहिन की तरह सम्मानित किया है । उसकी यह बात उसकी आखिरी दम तक पूरी होगी । माँ जीजाबाई ने जो बात मेरे लिए आज्ञा के रूप में कह दी है वह सूरज की किरण की तरह कभी धुँधली नहीं हो सकती । आप जब-जब यहाँ आएँ आपके लिए यह आसन [**आसन पर दृष्टि डालते समय काशीबाई द्वारा तोड़ी हुई माला दीख पड़ती है**] यह माला [**हाथ में उठा लेते हैं**] अभी तक आपके हृदय की तरह ही टूटी है ! इसे जुड़ जाना चाहिये [**माला में गाँठ देकर उसे झुलाते हैं**] किन्तु इसमें झुमका नहीं है । [**शिवाजी अपने कंठ में पड़े हुए लाल रत्नों का हार लेकर झुमका के स्थान पर जोड़ते हैं ।**] यह प्रेम

और अनुराग की सूचना देनेवाले लाल रत्नों से जुड़ी हुई माला शिवाजी की श्रद्धा भेंट समझें।

[माला गौहरबानू के गले में पहिनाते हैं, उसी समय काशी, सोना और गङ्गा तिलक-सामग्री लेकर प्रवेश करती हैं।]

काशी—[गौहर के गले में माला देखकर] श्रीमंत, यह माला मैंने गङ्गा से गुँथवाकर गौहरबानू के गले के लिए ही तैयार कराई थी। सिर्फ इसमें झुमका नहीं था। आज आपके हाथों से गौहरबानू के गले में माला पड़कर धन्य हो गई।

शिवाजी—ठीक है काशी। [सोना से] सोना, आज से यादव रामचन्द्र के स्थान पर आवाजी सोनदेव तुम्हारे भाई हुए। तुम्हारे समस्त जीवन का उत्तरदायित्व अब से इन पर होगा। काशी, तुम अपनी बहिन से मिलीं?

काशी—ओह सोना! मेरी बहिन। [आवाजी के हाथों में तिलक-सामग्री देकर सोना से मिलती है।]

आवाजी—बहिन, सोना! श्रीमंत की आज्ञा से मैं तुम्हारे बिलकुल निकट आ गया हूँ। यादव के स्थान पर अब तुम मुझे समझो।

सोना—[शिवाजी के सामने हाथ जोड़कर] मैं कृतार्थ हुई।

शिवाजी—और मैं प्रसन्न हुआ।

गौहर—अब मेरी प्रसन्नता का अवसर आने दीजिए।

[गौहरबानू सिंहासन से उतरकर अपने हाथ में तिलक सामग्री लेती है और श्रीमंत शिवाजी के सामने खड़ी होती है।]

गौहर—सिर झुकाइए, मैं आपका मङ्गल-तिलक करूँ!

शिवाजी—आपके सामने मैं हमेशा सर झुकाने में ही अपनी विजय समझूँगा। [मन्द हास्य। श्रीमंत शिवाजी थोड़ा सिर झुकाते हैं

और गौहरबानू उन्हें मङ्गल-तिलक करती है ।]

गौहरबानू—श्रीमन्त भोंसले शिवाजी महाराज की जय !

सब सामन्त—श्रीमन्त भोंसले शिवाजी महाराज की जय ! जीजाबाई की जय !! गौहरबानू की जय !!!

सोना—[थाली गौहर के हाथों से लेकर थाल में सजे हुए फूल श्रीमंत शिवाजी पर उछालकर] श्री शिवा-भवानी की जय !

सब—श्री शिवा-भवानी की जय !!

[इस समय श्रीमंत शिवाजी के मुख पर अलौकिक ज्योति-समूह है, जैसे उनके मुख पर शिवा-भवानी का वरदान आलोकित हो उठा है । धीरे-धीरे पर्दा गिरता है ।]